प्रसार दूत

कृषि विज्ञान की अग्रणी पत्रिका

सितम्बर 2022

कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)

कृषि प्रौद्योगिकी आकलन एवं स्थानान्तरण केन्द्र
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
नई दिल्ली–110012

संपादकीय

किसान भाइयों सादर नमस्कार। वर्षा का मौसम जाने वाला है यह माह कृषि में व्याधियों, कीटों एवं खरपतवारों की वृद्धि में सहायक होता है। इसलिए खेतों की नियमित निगरानी करते रहना चाहिए। इस बार वर्षा का अनियमित रहना या कम होना किसानों के लिए बहुत बड़ी समस्या बन गयी है। सितंबर माह में अचानक कम समय में ज्यादा वर्षा से किसानों को लाभ कम हानि ज्यादा हुई है। इसका सम्पूर्ण दोष जलवायु परिवर्तन को देना उचित नहीं है। असामान्य वर्षा कृषि उत्पादन में बहुत बड़ी समस्या बन रही है। इसके लिए किसान भाई पहले से ज्यादा अब सजग हो रहे हैं। कृषि को अब प्रकृति के भरोसे ना छोड़ें। उसको अब वैज्ञानिक तारीक से करने का प्रयास करें।

किसान भाइयों से अनुरोध है की सरकार द्वारा शुरू किया गए "कृषक उत्पादक संगठन" या एफ. पी. ओ. में अपनी सहभागिता दें। किसानों का कल्याण तभी हो सकता है जब बाजार किसानों के पक्ष में हो और उत्पादन का लाभकारी मूल्य मिले। समय की मांग है की विपणन व्यवस्था किसान अपने हाथों में लें।

हमें निश्चित रूप से पारंपरिक खेती से हटकर सोचना होगा। रोजमर्रा के घरेलू व्यय की पूर्ति हेतु नियमित आमदनी का उपाय खोजना होगा। इसके लिए हमें नई जानकारी, नई तकनीक, सूचना व संचार क्रान्ति एवं बाजार की चाल/नीति का ज्ञान/अनुभव पर ध्यान देना होगा। कृषि से अधिक आय प्राप्त करने के लिए कृषि के साथ पशु पालन, दुग्ध उत्पादन, मुर्गी पालन, मधु मक्खी पालन आदि कृषि आधारित व्यवसायों को अपनाने की आवश्यकता है।

प्रसार दूत के इस अंक में भी समसामयिक विषयों और कृषि कार्यों पर आधारित आलेख समाहित किए गए हैं, जैसे पूसा समाचारः कृषकों के लिए मल्टीमीडिया आधारित नवोन्मेषी प्रसार मॉडल, संरक्षित खेती के लिए नया पूसा गोल्डन चेरी टमाटर– 2, उसर भूमि में गेहूं बीज उत्पादन तकनीकी, प्राकृतिक एवं जैविक खेती– मूलभूत सिद्धांत, महत्व एवं उपयोगिता, नींबू वर्गीय फलों के प्रमुख कायकीय विकार एवं निवारण, शाकीय फसलों में लगने वाले कीटों का समेकित कीट प्रबंधन, जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों के समाधान के लिए चने की खेती आदि। आशा है ये अंक आपको उपयोगी एवं अच्छा लगेगा।

संपादक

सितम्बर 2022

प्रसार दूत

वर्ष 27 | 2022 | अंक-3

संरक्षक

डॉ. अशोक कुमार सिंह

निदेशक

डॉ. बी.एस. तोमर

कार्यवाहक संयुक्त निदेशक (प्रसार)

प्रधान सम्पादक

डॉ. जे.पी.एस. डबास

सम्पादक

डॉ. एन.वी कुंभारे

सम्पादक मंडल

डॉ. राजीव कुमार सिंह

डॉ. गोगराज सिंह जाट

डॉ. हरीश कुमार

डॉ. योगेन्द्र प्रताप सिंह

श्री आनन्द विजय दुबे

तकनीकी सहयोग

श्री विजय सिंह जाटव

श्री लक्खी राम मीणा

श्री राजेश सिंह

शुल्क और लेख भेजने एवं पत्रिका मंगाने का पता

कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)

भा.कृ.अ.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान

नई दिल्ली–110012

फोनः 011–25841039

पूसा एग्रीकॉमः 1800118989 (टोल फ्री)

ई–मेंलः incharge_atic@iari.res.in

वेबसाइटः www.iari.res.in

विषय सूची | पृष्ठ संख्या

सम्पादकीय

1. 'पूसा समाचार': कृषकों के लिए मल्टीमीडिया आधारित नवोन्मेषी प्रसार मॉडल 1
2. जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों के समाधान के लिए चने की खेती 4
3. पूसा पाकचोई–1: अधिक उपज एवं मुनाफे हेतु विदेशी सब्जी की उत्तम प्रजाति 11
4. संरक्षित खेती के लिए नया पूसा गोल्डन चेरी टमाटर–2 13
5. किसान उत्पादक संगठन (एफ.पी.ओ.): किसान सशक्तिकरण का एक माध्यम 17
6. प्राकृतिक एवं जैविक खेती–मूलभूत सिद्धांत, महत्व एवं उपयोगिता 21
7. भारत में जैविक कृषि की उपयोगिता 25
8. प्राकृतिक खेती की आवश्यकता क्यों ? 28
9. शाकीय फसलों में लगने वाले कीटों का समेकित कीट प्रबंधन 31
10. बुन्देलखण्ड में ड्रेगन फ्रूट की खेती 36
11. अधिक आय के लिए रबी के मौसम में सब्जियों की खेती 39
12. मूंग तथा अरहर उत्पादन तकनीकी पर आधारित प्रथम पंक्ति प्रदर्शन के सफल अनुभव 43
13. ऊसर भूमि में गेहूँ बीज उत्पादन तकनीकी 46
14. कृषि– बागवानी के क्षेत्र में कंप्यूटर अनुप्रयोग 50

वार्षिक शुल्क ₹ 150/– मनीआर्डर द्वारा | **एक प्रति मूल्य ₹ 40/–**

'पूसा समाचार': कृषकों के लिए मल्टीमीडिया आधारित नवोन्मेषी प्रसार मॉडल

राजर्षि रॉय बर्मन, गिरिजेश सिंह महरा, अशोक कुमार सिंह, रवीन्द्रनाथ पडारिया, सोनाली मलिक, अंजलि आनंद, अनंता वशिष्ठ, ज्ञान मिश्रा, कपिला शेखावत, विशाल सोमवंशी, शालिनी गौर रुद्रा, सीमा सांगवान, बिपिन कुमार, प्रवीण उपाध्याय, बिंदवी अरोड़ा एवं अजीत कुमार दास
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली 110 012

कृषि प्रसार सेवाएं किसानों को फसल उत्पादन एवं उत्पादकता में सुधार के लिए आवश्यक ज्ञान और प्रौद्योगिकी प्रदान करती हैं जिससे उनके जीवन और आजीविका की गुणवत्ता में सुधार होता है, इसलिए किसानों को गुणवत्तापूर्ण एवं समय पर कृषि आधारित समसामयिक जानकारी पहुँचना महत्वपूर्ण है। किसानों को कृषि प्रक्रिया के प्रत्येक चरण में मौसम पूर्वानुमान, इनपुट प्रबंधन, कीट और रोग प्रबंधन एवं बाजार की जानकारी आदि विभिन्न प्रकार की जानकारी की आवश्यकता होती है। आवश्यक जानकारी की प्रकृति के आधार पर, किसान अपने पसंदीदा सूचना श्रोत जैसे साथी किसानों, प्रगतिशील किसानों, टेलीविजन, रेडियो, समाचार पत्रों, निजी एजेंटों, मोबाइल फोन आदि का उपयोग करते हैं। भारत में वर्तमान कृषि प्रसार प्रारूप, किसानों को समय पर, विश्वसनीय और प्रासंगिक जानकारी देने में कई कठिनाइयों का सामना कर रहा है, और ऐसे में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) आज किसानों को कुशल एवं समयानुकूल कृषि प्रसार सेवाएं प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

स्मार्ट प्रौद्योगिकी के आगमन के साथ, भारत में इंटरनेट ग्राहकों की संख्या बढ़ रही है, वर्तमान में कुल इंटरनेट ग्राहकों की संख्या लगभग 825.30 मिलियन है, जिसमें 322.77 मिलियन इंटरनेट ग्राहक ग्रामीण क्षेत्रों से हैं । ग्रामीण भारत में सोशल मीडिया अभी भी कई लोगों के लिए एक नया विचार है, इसलिए लोग संकोच करते हैं, शर्म महसूस करते हैं, सार्वजनिक होने से बचते हैं और इसे गंभीरता से नहीं लेते हैं, लेकिन धीरे–धीरे बहुत से लोग महसूस कर रहे हैं कि सामाजिक और पेशेवर रूप से प्रासंगिक बने रहने के लिए सोशल मीडिया का सदप्रयोग उचित है। डिजिटल तकनीक, कृषि प्रसार को विशेष बढ़त दे सकती है और इस संबंध में सोशल मीडिया किसानों और प्रसार कार्यकर्ताओं दोनों के लिए बहुत उपयोगी उपकरण हो सकता है। भारत में फेसबुक के 410 मिलियन सक्रिय उपयोगकर्ता हैं, ट्विटर के 17.5 मिलियन उपयोगकर्ता हैं, व्हाट्सएप के 530 मिलियन उपयोगकर्ता हैं, और यूट्यूब में 448 मिलियन से अधिक उपयोगकर्ता जुड़े हुए हैं जो भारत में, यूट्यूब को अग्रणी सोशल मीडिया नेटवक्र बनाता है। वर्ष 2021 में यूट्यूब में "कृषि" संबन्धित शब्दों या विषयों को लगभग 3,00,000 बार खोजा गया है जो कृषकों एवं कृषि हितधारकों की जिज्ञासा को सिद्ध करती है । भारत ने सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) द्वारा कृषकों को समसामयिक जानकारी पहुँचाने हेतु कई सफल प्रयास किए है जिनमें ज्ञानदूत परियोजना (मध्य प्रदेश), वाराना वायर्ड ग्राम परियोजना (महाराष्ट्र), एमएस स्वामीनाथन रिसर्च फाउंडेशन (पांडिचेरी) की सूचना ग्राम परियोजना, आईटीसी ई–चौपाल, आई–किसान परियोजना, नागार्जुन समूह (आंध्र प्रदेश), अमूल डेयरी सहकारी समितियों के स्वचालित दूध संग्रह केंद्र (गुजरात), भूमि रिकॉर्ड कम्प्यूटरीकरण (भूमि) (कर्नाटक), नॉलेज नेटवक्र फॉर ग्रास रूट इनोवेशन–सोसाइटी फॉर रिसर्च एंड इनिशिएटिव्स (सृष्टि) आदि शामिल हैं, किन्तु कई अनुसंधान यह बताते हैं कि अभी भी भारत में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) का कृषि उत्पादकता हेतु उपयोग उचित प्रकार से नहीं हो पाया है।

'पूसा समाचार': एक नवोन्मेषी प्रसार मॉडल

इसी परिपेक्ष को मध्येनजर रखते हुए भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली ने सोशल

मीडिया के माध्यम से कृषकों एवं वैज्ञानिकों के बीच दोतरफा सूचना साझा करने हेतु 'पूसा समाचार' नामक मल्टीमीडिया–आधारित प्रसार मॉडल शुरू किया। इस मॉडल के तहत, यूट्यूब के माध्यम से पूरे भारत में किसानों को प्रमुख फसलों की समय पर, स्थान विशिष्ट और आवश्यकता आधारित जानकारी के साथ मौसम की जानकारी दी जा रही है। पूसा समाचार 15 अगस्त 2020 को आरंभ किया गया था और पूसा समाचार का पहला अंक 22 अगस्त 2020 को संस्थान के आधिकारिक यूट्यूब चैनल पर प्रसारित किया गया, तब से हर शनिवार शाम 7 बजे संस्थान के आधिकारिक यूट्यूब चैनल में नया अंक अपलोड किया जा रहा है। अब तक हिंदी में 109 अंक अपलोड किए जा चुके हैं। देश भर में अधिक से अधिक किसानों तक पहुंचने के लिए, पूसा समाचार 5 क्षेत्रीय भाषाओं में भी तैयार किया जा रहा है, जिसके तहत तमिल में 29 अंक, कन्नड़ में 26 अंक, तेलुगु में 14 अंक, बांग्ला में 27 अंक और उड़िया में 2 अंक अपलोड किए गए हैं। चैनल के साथ जुड़े कृषकों एवं अन्य हितधारकों की संख्या दिन–ब–दिन बढ़ते जा रहे हैं और वर्तमान में यह करीब 7 लाख व्यू के साथ 26,000 के आसपास पहुंच गई है।

क्यूँ खास होता है पूसा समाचार का प्रत्येक अंक

- ❖ पूसा समाचार के प्रत्येक अंक में प्रमुख फसलों की समय पर, स्थान विशिष्ट और आवश्यकता आधारित तकनीकी जानकारी, सफल किसान कहानियां, पूसा व्हाट्सएप सलाह और मौसम पूर्वानुमान दिया जा रहा है।
- ❖ एक समर्पित पूसा व्हाट्सएप नंबर लॉन्च किया गया है (9560297502), जिसमें किसान अपने खेत की समस्याओं को तस्वीरों के साथ भेज रहे हैं और पूसा के वैज्ञानिक तुरंत समाधान सांझा कर रहे हैं। भारत भर के किसान अपने खेत की समस्याओं की तस्वीरें और विवरण भेज रहे हैं। पूसा वाट्सएप सलाह खंड के तहत चयनित समस्याओं के साथ किसानों का नाम और समाधान पूसा समाचार के अंकों में दिखाया जा रहा है। इसने पूसा संस्थान के वैज्ञानिकों को सीधे किसानों से जोड़ा है। समस्याओं के अलावा किसान अपनी प्रतिक्रिया और सुझाव नियमित रूप से भेज रहे हैं।

'पूसा समाचार' का विश्लेषणः

- ❖ 'पूसा समाचार' में प्रस्तुत विषय
- ❖ पूसा समाचार (हिंदी) में, किसानों की सफलता की कहानियों सहित 17 विभिन्न कृषि विषयों में कुल 274 समसामयिक जानकारियाँ शामिल की गईं। विश्लेषण से पता चला है कि विषय कवरेज इस प्रकार हैः सस्य विज्ञान (21.15%), आनुवांशिकी (16.60), पादप रोग विज्ञान (10.90%), सब्जी विज्ञान (25.34%), बागवानी (7.15), कीट विज्ञान (4.16) संरक्षित खेती (2.33)%), कृषि आभियांत्रिकी (3.12%), सूक्ष्म जीव विज्ञान (2. 77%), मृदा विज्ञान (1.06%), अर्थशास्त्र (1.15%), फूलों की खेती (1.01%), छात्र आधारित विषय/करियर (0. 28), जैव रसायन (2.07%), कृषि रसायन (0.16%) और किसानों की सफलता की कहानियां (0.75%)।
- ❖ यदि हम फसल के अनुसार देखें तो कवरेज इस प्रकार हैः अनाज के 65 विषय(धान, गेहूं, मक्का, बाजरा), तिलहन के 10 विषय (सरसों), सब्जियों के 82 विषय (पत्तेदार सब्जियां, मटर, प्याज, लहसुन, गाजर, टमाटर आलू, बथुआ, भिंडी, करेला, लौकी, खीरा, मिर्च, सामान्य प्रबंधन आदि), दालों पर 19 विषय (चना, मसूर, मूंग), फलों पर 17 विषय (पपीता, अमरूद, आम, सेब, नींबू वर्गीय), 2 विषय फूलों की खेती (गुलाब और संरक्षित खेती) और सामान्य विषयों पर 51 विषय (एकीकृत खेती प्रणाली, लीफ़ कलर चार्ट, पूसा डीकंपोजर, फार्म बिल, कृषि में कैरियर, पूसा एसटीएफआर मीटर, जैव उर्वरक अनुप्रयोग, स्पिरुलिना, मशरूम उत्पादन आदि)
- ❖ 'पूसा समाचार' को किसानों द्वारा देखे जाने की संख्याः पूसा समाचार (हिन्दी) के सभी अंकों को कुल 2,95,279 बार देखा गया, जो की कुल 15546 घंटे का वॉच टाइम है। यह भी पाया गया कि कुल देखे गए समय में 14. 35 प्रतिशत महिलाओं का योगदान और 85.65 प्रतिशत पुरुषों का योगदान है।
- ❖ पूसा समाचार के अंकों की साझेदारीः पूसा समाचार के विभिन्न अंकों के लिंक को किसानों ने एक दूसरे के

साथ सांझा किया है, जिसके लिये उन्होंने व्हाट्सएप (11326 शेयर), फेसबुक (610 शेयर), जीमेल (134 शेयर), ट्विटर (70 शेयर), फेसबुक मैसेंजर (40 शेयर) का उपयोग किया ।

- ❖ पूसा समाचार का विश्लेषण प्राथमिक डेटा के आधार पर भी किया गया जो की 159 किसान, 112 छात्र, 25 शोधकर्ता और 22 प्रसार सेवाओं से जुड़े लोगों से प्राप्त किया गया। इस प्रकार, यूट्यूब विश्लेषण के डेटा के साथ 318 हितधारकों से प्राथमिक डेटा एकत्र किया गया। यह पाया गया की 88.67 प्रतिशत प्राथमिक हितधारक (किसान) नियमित रूप से पूसा समाचार देखते हैं और उनमें से 81.13 प्रतिशत अपने सहयोगियों के साथ पूसा समाचार के अंकों को साझा भी करते हैं।
- ❖ पूसा समाचार मॉडल के बारे में जानकारी के श्रोत का विश्लेषण करते हुए, यह पाया गया की यूट्यूब सूचना का प्रमुख स्रोत था (67%)। व्हाट्सएप (15%), साथी सहयोगियों के साथ मौखिक संचार (13%), फेसबुक (4%) और ट्विटर (1%) की भूमिका निभा रहे हैं। विश्लेषण ने यह भी दर्शाया की 67 प्रतिशत हितधारकों ने पूसा समाचार के हर अंक को पूरा देखना पसंद किया जबकि 32.7 प्रतिशत ने अंक के उस हिस्से को देखना पसंद किया जो उनकी आवश्यकता और समस्या के अनुसार प्रासंगिक है।
- ❖ अधिकांश हितधारकों का मानना था कि पूसा समाचार में प्रस्तुत जानकारी व्यवस्थित है और उनको बेहतर सीखने में मदद करता है। यह पाया गया कि वीडियो में दिखाये गई लिखित जानकारी/टेक्स्ट हितधारकों के लिए स्पष्ट रूप से पठनीय है लेकिन ध्वनि और वीडियो की गुणवत्ता में सुधार किया जा सकता है।

निष्कर्ष

ग्रामीण क्षेत्रों में बुनियादी ढांचे की कमी के कारण विशेष रूप से विकासशील देशों में कृषि को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। आईसीटी किसानों को बेहतर निर्णय लेने में मदद करने के लिए स्थान विशिष्ट और समय पर जानकारी प्रसारित करने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। यह स्पष्ट है कि कृषि प्रसार हेतु नवोन्मेशी मॉडल जो हितधारकों की जरूरतों के आधार पर तैयार और उचित रूप से डिजाइन किया गया हो, हितधारकों द्वारा उसकी स्वीकृति की संभावना अधिक है । वर्तमान पूसा समाचार मॉडल ने दिखाया है कि अनुसंधान संस्थान सोशल मीडिया की शक्ति का उपयोग करके कृषि आधारित वैज्ञानिक जानकारी का प्रभावी ढंग से प्रसार कर सकते हैं। बड़े पैमाने पर स्वीकृति के लिए मल्टीमीडिया में ऑडियो, वीडियो और ग्राफिक्स प्रबंधन पर उचित ध्यान दिया जाना चाहिए। इस अध्ययन के निष्कर्षों से पता चला है कि विभिन्न कृषि संस्थान व विश्वविद्यालय मल्टीमीडिया सलाहकार सेवाएं प्रभावी ढंग से प्रदान कर सकते हैं। राज्य के कृषि विभाग भी इसी तरह आकस्मिक फसल प्रबंधन के विशेष संदर्भ के साथ किस्म, रोग और कीट प्रबंधन के संबंध में मल्टीमीडिया आधारित विशिष्ट प्रसार मॉडल तैयार कर सकते हैं।

जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों के समाधान के लिए चने की खेती

अंकित, कुलदीप सिंह राणा एवं रामस्वरूप बाना
सस्य विज्ञान संभाग,
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली 110 012

चना शरद ऋतु या रबी के मौसम में उगाई जाने वाली एक मुख्य दलहनी फसल है जिसकी खेती के प्रमाण प्राचीन आर्यवृत के वैदिक काल से लेकर आधुनिक भारत के इतिहास में देखने को मिलते हैं। यही कारण है कि भारत वर्ष को चने का उत्पत्ति स्थल भी माना जाता है। दलहनी फसलों के अंतर्गत उत्पादन एवं क्षेत्रफल की दृष्टि से चने की खेती सर्वाधिक क्षेत्रफल पर की जाती है जबकि अरहर या तुर का द्वितीय स्थान है। वर्ष 2020–21 के दौरान हमारे देश के कुल दलहन उत्पादन में चने का योगदान लगभग 49 प्रतिशत था जो सर्वाधिक है। वर्तमान में भारत के लगभग 10.6 मिलियन हेक्टर क्षेत्र पर चने की खेती की जाती है जिससे लगभग 12.6 मिलियन टन उत्पादन हुआ है। हमारे देश में चने की उत्पादकता 1067 किलोग्राम प्रति हेक्टर है जो विश्व के औसत से कम है। यद्यपि भारत चने के उत्पादन में शीर्ष स्थान पर है उत्पादकता के क्षेत्र में अग्रणी होने के लिए इसकी खेती में अपार संभावनाएं हैं।

अनाज वाली फसल के उत्पादन के पश्चात मिट्टी के स्वास्थ्य को दुरुस्त रखने एवं मनुष्य के आहार में प्रोटीन एवं कार्बोहाइड्रेट के सही संतुलन को बनाए रखने के लिए इस फसल की खेती किसान अपने अनुभव के आधार पर सदियों से करते आ रहे हैं। हालांकि, जलवायु परिवर्तन एवं मिट्टी के स्वास्थ्य में गिरावट के कारण इसके प्रति इकाई उत्पादन स्तर में स्थिरता आ गई है जो बढ़ती हुई जनसंख्या की मांग को पूर्ण करने में चुनौती के रूप में उभर रही है। बढ़ती हुई जनसंख्या के साथ–साथ प्रोटीन, जो हमारे शरीर वृद्धि एवं विकास में मुख्य भूमिका निभाती है, की मांग भी निरंतर बढ़ रही है, जिसके कारण पर्यावरण की न्यूनतम क्षति को सुनिश्चित करते हुए प्रोटीन के अधिकाधिक उत्पादन की एक वैश्विक दौड़ भी प्रारम्भ हो चुकी है। भारत समेत विश्व के कई विकसित देश जैसे अमेरिका आदि ने कृषि उत्पादन बढ़ाने के टिकाऊ तरीका पर बल देना प्रारम्भ कर दिया है। इसलिए, पर्यावरणीय चुनौतियों एवं बढ़ती मांग के साथ–साथ इसके टिकाऊ एवं इष्टतम उत्पादन स्तर के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए चने की खेती की उन्नत विधियों को अपनाने की आवश्यकता है।

आर्थिक महत्व

आर्थिक महत्व की दृष्टि से चने की फसल भारतीय कृषि में एक विशेष स्थान रखती है। उच्च पोषक गुणवत्ता से लेकर प्रति इकाई अधिक शुद्ध लाभ इस फसल की महत्ता को प्रदर्शित करते हैं। विश्व भर में चने की हरी पत्तियों को साग, सूप एवं सब्जी तथा इसके दाने को दाल एवं इसके आटे को विभिन्न पकवानों को बनाने के लिए प्रयोग किया जाता है। हमारे देश में चने का एक विशेष सांस्कृतिक महत्व है क्योंकि इसके आटे, जिसे व्यवहार में बेसन के रूप में जानते हैं, का प्रयोग लड्डू बनाने के लिए किया जाता है। इसके अतिरिक्त विवाह संस्कार से लेकर किसी भी मांगलिक अनुष्ठान में चने अथवा इसके द्वारा

बनाए गए पकवानों का विशेष महत्व है। चने में प्रोटीन की प्रचुर मात्रा उपलब्ध होती है जिसके कारण यह मनुष्य के लिए प्रोटीन का एक समृद्ध श्रोत है। भीगे हुए चने किशोरों के लिए एवं भुने हुए चने (मख्ता) वृद्धों के लिए प्रोटीन, खनिज लवण एवं रेशे की पूर्ति के लिए सर्वोत्तम हैं।

चने की कटाई के उपरांत फसल से मिलने वाला भूसा एवं फलियों का छिलका पशुओं के लिए एक उत्तम शुष्क पदार्थ का श्रोत है क्योंकि इसकी पत्तियों तथा फली के आवरण में प्रोटीन प्रचुरता से उपलब्ध होती है। अनाज वाली फसलों से प्राप्त भूसे की अपेक्षा इसके भूसे को पशुओं द्वारा अधिक पसंद किया जाता है।

तालिका 1: चने में उपलब्ध पोषक तत्व एवं रासायनिक संघटन

पोषक तत्व	**मात्रा (प्रति शत)**
कार्बोहाइड्रेट	58–60
प्रोटीन	20–25
वसा	5–6
रेशा	16–17
खनिज लवण	
कैल्शियम	50–60 मिग्रा./100 ग्रा.
लोहा	3.5–4.5 मिग्रा./100 ग्रा.
मैग्निशियम	70–80 मिग्रा./100 ग्रा.
फॉस्फोरस	240–250 मिग्रा./100 ग्रा.
सोडियम	20–25 मिग्रा./100 ग्रा.
ज़िंक	2.0–3.0 मिग्रा./100 ग्रा.
ताँबा	0.5–0.6 मिग्रा./100 ग्रा.
मैंगनीज	20.0–21.0 मिग्रा./100 ग्रा.
विटामिन	
विटामिन सी (एस्कोर्बिक एसिड)	3.0–4.0 मिग्रा./100 ग्रा.
विटामिन बी 1 (थायमीन)	0.45–0.50 मिग्रा./100 ग्रा.
विटामिन बी 2 (राइबोफ्लेविन)	0.1–0.2 मिग्रा./100 ग्रा.
विटामिन बी 3 (नायसिन)	1.0–1.5 मिग्रा./100 ग्रा.
विटामिन बी 5 (पेंटोथेनीक एसिड)	1.5–2.0 मिग्रा./100 ग्रा.
विटामिन बी 6 (पायरिडॉक्सिन)	0.45–0.50 मिग्रा./100 ग्रा.
विटामिन बी 12 (सायनोकोबिलामीन)	–
विटामिन ए (रेटिनॉल)	60–70 आईयू
विटामिन डी (कैल्सिफेरॉल)	–
विटामिन ई (टोकोफेरॉल)	0.75–0.85 मिग्रा./100 ग्रा.
विटामिन के (मिथाइल नेफ़्थोक्विनॉन)	8.0–9.0 माइक्रोग्रा./100 ग्रा.
ऊर्जा	378 किलो कैलोरी प्रति 100 ग्राम

आवश्यक जलवायु

चने के इष्टतम उत्पादन के लिए ठंडा एवं शुष्क मौसम सबसे अधिक अनुकूल होता है। ये वातावरणीय दशाएँ उत्तर भारत (उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश एवं हरियाणा) में मुख्यतः जाड़े के दिनों में मिलती हैं जिसे रबी का मौसम भी कहते हैं। दक्षिण भारत (कर्नाटक, आन्ध्रप्रदेश एवं महाराष्ट्र) में भी इसकी खेती रबी के मौसम में ही की जाती है।

अनुकूल तापक्रम

चना एक दीर्घकालिक पौधा है अर्थात इसके पुष्पण के लिए प्रकाश की अधिक समयावधि आवश्यक होती है। कम प्रकाश अवधि एवं निम्न तापक्रम इसके पुष्पण पर विपरीत प्रभाव डालने वाले वातावरणीय मुख्य कारक हैं।

तालिका 2: चने की वृद्धि एवं विकास के लिए अनुकूल तापक्रम

अवस्था	**अनुकूल तापक्रम (□)**
जमाव या अंकुरण	10–15
वानस्पतिक वृद्धि	25–28
पुष्पण	15–20
दाना भरने और पकाने की अवस्था	25–30

वार्षिक वर्षा

चने के खेती मुख्यतः वर्षा आश्रित क्षेत्रों में ही की जाती है इसलिए वर्षा जल की मात्रा एवं वर्षाकाल इसकी सफल खेती के लिए दो महत्वपूर्ण कारक हैं। मध्यम वर्षा वाले वे क्षेत्र जहां लगभग 60 सेमी. से लेकर 90 सेमी. वार्षिक वर्षा होती है, चने की खेती के लिए सर्वथा उपयुक्त है। बुवाई के तुरंत बाद भारी वर्षा, जो प्रायः पश्चिमी विक्षोभ के कारण होती है, तथा फूल आने और फलियाँ भरने की अवस्था या या पकने के समय ओलावृष्टि से उपज में भारी नुकसान होता है।

उपयुक्त मृदा

हमारे देश में चना मुख्यतः मध्यम भारी मिट्टी (दक्षिणी भारत), कपास की काली मिट्टी (महाराष्ट्र) और बलुई दोमट (उत्तर भारत) मिट्टी में उगाई जाती है। हालांकि, इसकी खेती के लिए उपजाऊ रेतीली दोमट से लेकर चिकनी दोमट मृदा गठन के साथ अच्छी आंतरिक जल धारण क्षमता एवं जल निकासी वाली मिट्टी सबसे उपयुक्त होती है। क्षारीय मिट्टी या अधिक भारी प्रकृति की मृदा में चने की उपज पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

कृषि की उन्नत विधियाँ

उत्पादन लागत के सापेक्ष इष्टतम उत्पादन प्राप्त करने के लिए विभिन्न संस्थानों द्वारा संस्तुत कृषि के वे आधुनिक एवं पर्यावरण हितैषी विधियाँ जिन्हें अपनाने से फसल के उत्पादन में वृद्धि, प्रति इकाई कम लागत, अधिक आय सुनिश्चित होती है, कृषि की उन्नत विधियाँ कहलाती हैं।

किस्म का चुनाव

किसी भी फसल का उत्पादन स्तर कई कारकों पर निर्भर होता जिसमें उपयुक्त किस्म का चुनाव मुख्य है। फसल की किस्म के चुनाव करते समय तापमान, मिट्टी का प्रकार एवं उसकी जलधारण क्षमता, नमी की उपलब्धता, वर्षा की मात्रा एवं वर्षाकाल आदि ध्यान में रखने चाहिए।

हमारे देश में चने के दोनों प्रकार की खेती की जाती है जिसमें देशी चना मुख्यतः उगाया जाता है। काबुली या सफ़ेद चने की खेती बहुत कम क्षेत्रफल पर की जाती है क्योंकि इसमें रोग–व्याधियों की समस्या अपेक्षाकृत अधिक होती है जिसके कारण उत्पादन लागत में वृद्धि हो जाती है और उपज कम मिलती है।

तालिका 3: चने की अधिक उपज देने वाली किस्में

दशा	उपयुक्त किस्में	
	देशी चना	**काबुली चना**
सिंचित क्षेत्र	गणगौर, गौरी, अंकुर, शुभ्रा, कृपा आदि	पी.के.वी. काबुली 4, पंत काबुली चना 1, M.N.K. 1, राज विजय काबुली चना 101
वर्षा आश्रित क्षेत्र	पी.के.वी. हरिता	
समय से बुवाई	बिरसा चना 3	जेजीके 5
देर से बुवाई	अंशुल, GNG 2144, JSC 56	
अंतरासस्यन	JG 315, JG 322, JG 16, JG 130 आदि	

अर्ध–शुष्क उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों के लिए अंतर्राष्ट्रीय फसल अनुसंधान संस्थान (ICRISAT), हैदराबाद ने अक्तूबर 2021 में चने की तीन नई क़िस्मों BG 4005, IPC L4–14 और IPCMB 19–3 की घोषणा की है। ये किस्में देश में चने की खेती के क्षेत्रों में जलवायु और अन्य चुनौतियों से कुशलतापूर्वक निपटने के उद्देश्य से भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICAR) और ICRISAT के संयुक्त प्रयासों द्वारा जीनोमिक्स–असिस्टेड ब्रीडिंग के माध्यम से विकसित की गई हैं। चने की इन तीन किस्मों में से दो किस्में BG 4005 और IPCMB 19–3 सितंबर वर्ष 2021 को माननीय प्रधानमंत्री द्वारा राष्ट्र को समर्पित 35 फसल किस्मों में से एक थीं।

बीज की बुवाई

खेत की तैयारी

आमतौर पर चने को बारानी परिस्थितियों में संरक्षित मिट्टी की नमी पर उगाया जाता है। यदि मिट्टी में नमी अपर्याप्त पाई जाती है तो फसलों के अच्छे अंकुरण को सुनिश्चित करने के लिए बुवाई पूर्व सिंचाई (पलेवा) के बाद खेत तैयार किया जाना चाहिए। इसकी खेती के लिए मिट्टी की जुताई इस प्रकार की जानी चाहिए की मिट्टी भुरभुरी

होने के साथ–साथ ढेलेयुक्त हो जिससे मिट्टी और बीज में नमी व वायु के पर्याप्त आदान–प्रदान के साथ–साथ अच्छी जल निकासी हो सके और बीजों का अंकुरण सुगमतापूर्वक हो सके। पूर्ववर्ती फसल के अवशेष जड़ में लगने वाले रोगों जैसे ग्रीवा विगलन का कारण बनने वाले रोगजनकों को आश्रय देते हैं, इसलिए इन फसल अवशेषों को खाद गड्ढे में डालकर अथवा पर्याप्त रूप से उपचारित करके ही पलवार आदि के रूप में प्रयोग किया जाना चाहिए।

बुवाई का समय

भारत में चने की बुवाई सामान्यतः रबी के मौसम में खरीफ फसलों के बाद या खरीफ की परती भूमि पर मिट्टी में संचित नमी के आधार पर अक्तूबर से नवंबर के मध्य की जाती है। चने की देर से बुवाई दिसंबर से लेकर जनवरी माह तक की जा सकती है। देर से बोई जाने वाली फसल में मिट्टी में नमी के अभाव, अधिक रोग कीट एवं व्याधियाँ जैसे पॉड–फ्लाई के कारण की उपज में 60 प्रतिशत से अधिक की कमी आ जाती है। इस स्थिति में फसल को पुष्पण एवं फलन अवस्था जैसे महत्वपूर्ण चरण पर उच्च तापक्रम का अनुभव हो सकता है जिससे बीज की गुणवत्ता और उपज कम हो जाती है।

बीज दर

सामान्यतः देशी चने (छोटे से मध्यम आकार का बीज) को 75 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से एवं काबुली चने (बड़े आकार का बीज) को 100 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से बोया जाता है। हालांकि, चने की बीजदर उसके बीज के आकार एवं भार पर निर्भर करती है। इसलिए ICRISAT, हैदराबाद ने बीज के आकार एवं भार के अनुसार चने की बीजदर संस्तुत की है (तालिका 4)।

तालिका 4: बीज के आकार एवं भार के अनुसार चने की बीजदर (किग्रा/हे.)

बीज का आकार	बीज का भार	बीज दर (किग्रा/हे.)
छोटे आकार के बीज (JG 315)	20 ग्राम से कम	50–60
माध्यम आकार के बीज (JG 11, JG 130, JAKI 9218)	20 से 30 ग्राम	60–90
बड़े आकार के बीज (KAK 2, Vihar, LBeG 7)	30–40 ग्राम	90–120
अधिक बड़े आकार के बीज (JGK 3)	40 ग्राम से अधिक	120–150

बीजोपचार

चने के बीजोपचार का मुख्य उद्देश्य बेहतर अंकुरण, खेत में पोधों की शत–प्रतिशत संख्या एवं इष्टतम उपज प्राप्त करना है। चने का बीज उपचार उपलब्धता एवं सुविधा के अनुसार निम्न क्रियाओं द्वारा किया जा सकता है–

भौतिक उपचार

चने का भौतिक उपचार इसके बीजों को 4 से 6 घंटे या रातभर पानी में भिगोकर किया जाता है। इस क्रिया को 'सीड प्राइमिंग' भी कहते है। इससे न केवल बीज की जीवन क्षमता में वृद्धि होती अपितु रोगी और हल्के बीज सुगमता से पृथक हो जाते हैं जिससे बेहतर अंकुरण और स्वस्थ फसल प्राप्त होती है। सस्ती और प्रभावी होने के कारण यह क्रिया किसानों द्वारा सामान्य रूप से अपनाई जाती है।

रासायनिक उपचार

चना के बीज को कार्बोक्सिन (वीटावैक्स) नामक कवकनाशी की 2 ग्राम मात्रा प्रति किलोग्राम की दर से उपचारित करना चाहिए। यह उपचार फसल की प्रारम्भिक अवस्था में पौधे को श्क्लेरोशिया रॉल्फ्सी नामक कवक से फैलने वाली मृदाजनित बीमारी जिसे ग्रीवा विगलन (कॉलर रॉट) के नाम से जानते हैं, से सुरक्षा प्रदान करता है।

जैविक उपचार

चने के बीजों को प्रभावी जैव नियंत्रण एजेंट जैसे ट्राइकोडर्मा विरिडी, जो एक प्रकार की परजीवी फफूंद है और प्रारम्भिक अवस्था में मृदा–जनित बीमारियों से पोधों की रक्षा करती है, की 4 ग्राम मात्रा से प्रति किग्रा बीज को उपचारित करना चाहिए। पोषक तत्वों की उपलब्धता को बढ़ाने के लिए बीजों को राइजोबियम और फोस्फोरस विलायक जीवाणु (पीएसबी) की 200 ग्राम मात्रा को प्रति 10 किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करना चाहिए।

बुवाई की विधि एवं पद्धतियाँ

चने की बुवाई समान्यतः पारंपरिक केरा या पोरा विधि से की जाती है जिसमें कीप या टी–आकार की पोरा को हस्त चालित हल के पीछे लगाया जाता है तथा किसान बीज को अपने अनुभव के आधार पर 10 से 15 सेमी. की दूरी पर गिराता चला जाता है। बीज ड्रिल का प्रयोग कम समय में अधिक क्षेत्र पर बुवाई करने और उचित फसल अंतरण स्थापित करने के लिए किया जा सकता है।

ब्रॉडबेड और फ़रो सिस्टम या रिज और फ़रो पद्धति

इस विधि में चने को 15 सेमी. ऊंची उठी हुई क्यारियों जिनकी चौड़ाई 90 सेमी. राखी जाती है, में बोया जाता है जिससे मिट्टी में नमी संरक्षण और जल निकास सुनिश्चित हो जाते हैं। दो क्यरियों के मध्य एक 60 सेमी. चौड़ाई और 15 सेमी. गहरा कूँड़ बनाया जाता है जो सिंचाई एवं आवश्यकता से अधिक पानी के निकास के लिए सिंचाई या जल निकास नाली की तरह उपयोग किया जाता है। बुवाई की यह पद्धति मिट्टी में नमी सरंक्षण के साथ क्यारियों में निराई–गुड़ाई कार्यों के लिए बहुत उपयोगी है।

एक्वासोइंग

भारत के उत्तर–पश्चिमी मैदानी इलाकों के अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में सर्दियों की फसलों की बुवाई के समय मिट्टी में नमी की कमी बीजों के अंकुरण में कई बाधाएँ पैदा करती है। इसके अतिरिक्त, पोधों की वृद्धि के दौरान पोषक तत्वों की उपलब्धता की कमी प्रभावी होती है। इसलिए ऐसी समस्याओं को दूर करने के लिए पोषक तत्व घोल के रूप में 15,000–20,000 लीटर पानी प्रति हेक्टेयर बुवाई के समय फसल के जड़ क्षेत्र में छिड़काव के रूप में दिया जाता है, जिसे एक्वा–सोइंग कहा जाता है।

फसल अंतरण

इष्टतम उपज प्राप्त करने के लिए चने की बुवाई पंक्तियों में करनी चाहिए जिससे निराई–गुड़ाई, अवांछित पोधों के निष्कासन और प्रक्षेत्र निरीक्षण की सुविधा भी मिलती है। आमतौर पर देसी चने को पंक्ति से पंक्ति में 30 सेमी की दूरी पर और पौधे से पौधे के बीच 10 सेमी की दूरी पर बोया जाता है जिससे लगभग 33 पौधे प्रति वर्ग मीटर के क्षेत्र में समायोजित होते हैं। इस प्रकार एक हेक्टेयर प्रक्षेत्र में लगभग 330,000 पोधों की संख्या की संस्तुति की गई है। फसल अंतरण बीज के आकार पर भी निर्भर करता है। इसलिए बड़े बीज वाले काबुली चने में पंक्तियों के मध्य अधिक दूरी (45–60 सेमी.) का उपयोग किया जाता है।

बीज बोने की गहराई

चने में अधोभूमिक अंकुरण होता है अर्थात इसके बीजदल अंकुरण के पश्चात भूमि के अंदर ही रह जाते हैं जो तरुण पौधे को पोषण प्रदान करते हैं। इसलिए नम मिट्टी के साथ सम्पर्क बनाने और जैव उपचारित बीजों की सतह पर उपस्थित जीवाणुओं की सहजीविता के लिए बीज को गहराई से बोना चाहिए। चने के बीज को मिट्टी में 5–8 सेमी की गहराई बोने पर उसका उद्भव आदर्श रूप से होता है क्योंकि इस गहराई पर बीज को उचित नमी के साथ आवश्यक तापक्रम (7 से 10 डिग्री सेल्सियस) भी मिलता है।

अंर्तसस्य क्रियायें

चने को सरसों या राई के साथ अन्तः फसल के रूप में लिया जा सकता है। चने कि प्रत्येक आठ पंक्तियों के बाद एक पंक्ति में सरसों या राई की बुवाई की जाती है जिससे किसानों को अतिरिक्त आय की प्राप्ति होती है। राई की पूसा बोल्ड, वरुना और पूसा जय किसान आदि किस्में चने के साथ अंतरासस्यन के लिए संस्तुत की गई हैं। इस फसल पद्धति में चने की बीज दर 70 किग्रा./हे. और राई की बुवाई 5 किग्रा./हे. दर से की जा सकती है।

जल प्रबंधन

बारानी और वर्षा–आश्रित क्षेत्रों में उगाई जाने वाली रबी की फसलों में जल प्रबंधन एक चुनौतीपूर्ण कार्य है क्योंकि इन क्षेत्रों में चने की बुवाई मिट्टी की संरक्षित नमी पर की जाती है और इस नमी का लंबे समय तक संरक्षण और फसल द्वारा इसका समुचित उपयोग सुनिश्चित करने के लिए खरीफ की फसल की कटाई के तुरंत बाद यथासमय बुवाई करना कठिन है। जबकि सिंचित क्षेत्रों में बुवाई के

समय मिट्टी में अपर्याप्त नमी की दशा में हल्की सिंचाई देकर खेत तैयार किया जा सकता है। काबुली चने में बुवाई के तुरंत बाद विशेष रूप से गहरी काली मिट्टी में सिंचाई नहीं करनी चाहिए क्योंकि काबुली चने का बीजावरण देसी चने की तुलना में पतला होता है जिसके कारण मिट्टी में यह शीघ्रता से गल कर समाप्त हो जाता है।

वातावरणीय दशाओं एवं चयनित किस्म के अनुसार चने की जलमांग 350 मिमी– 500 मिमी तक होती है जिसे फसल की क्रांतिक अवस्थाओं यथा– शाखाओं के विकास के समय और दूसरी फलियों में दाना बनने की अवस्था पर आवश्यक रूप से पूर्ण किया जाना चाहिए। इस प्रकार कुल दो सिंचाइयाँ चने के लिए पर्याप्त होती हैं। भारी मृदा में अधिक सिंचाई देने पर वानस्पतिक वृद्धि अधिक होती है तथा उपज कम हो जाती है।

जल प्रबंधन से जुड़ी हुई किसान कवि घाघ की कुछ कहावतें किसानों के लिए सिंचाई की संख्या और समय निर्धारण में सहायक हो सकती हैं–

रोहिनी जो बरसै नहीं, बरसे जेठा मूर।
एक बूंद स्वाती पड़ै, लागै तीनिउ नूर।।

अर्थात, यदि रोहिणी नक्षत्र (अगस्त माह) में वर्षा न हो पर ज्येष्ठा और मूल नक्षत्र (नवंबर माह) बरस जाए तथा स्वाती नक्षत्र (जुलाई माह) में भी कुछ बूंदे पड़ जाएं तब रबी के तीनों अन्न (जौ, गेहूं, और चना) की अच्छी उपज प्राप्त होती है।

पोषक तत्व प्रबंधन

चने में उर्वरक की आवश्यकता मिट्टी में पोषक तत्वों की उपलब्धता पर निर्भर करती है। इस प्रकार, उर्वरक की मात्रा जलवायु, मिट्टी के प्रकार, चने की किस्म के अनुसार भिन्न होती है। अतः उर्वरकों की मात्रा मिट्टी परीक्षण के परिणामों के आधार पर निर्धारित की जानी चाहिए। चने के लिए आमतौर पर उर्वरकों की अनुशंसित मात्रा में 20–30 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर नाइट्रोजन और 40–60 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर फास्फोरस सम्मिलित है। यदि मिट्टी में उपलब्ध पोटैशियम की मात्रा कम है, तो 17 से 25 किग्रा प्रति हेक्टेयर पोटैशियम के प्रयोग की अनुशंसा की जाती है। सभी उर्वरकों की संस्तुत मात्रा को खेत की तैयारी दौरान अंतिम जुताई के समय दिया जाता है। डाई अमोनियम फॉस्फेट या यूरिया के 2 प्रतिशत के छिड़काव से फलियों की संख्या एवं कुल उपज में वृद्धि होती है। चने के बीज उर्वरकों के सीधे सम्पर्क में आने के प्रति संवेदनशील होते हैं इसलिए फास्फोरस एवं पोटैशियम उर्वरकों को पंक्तियों में पौधे से लगभग 10 सेमी की दूरी पर दिया जाता है जिसे पंक्ति प्रतिस्थापन विधि कहते हैं, जबकि अमोनिकल उर्वरकों को छिड़काव विधि द्वारा दिया जा सकता है।

हमारे देश में चना उगाने वाले विभिन्न क्षेत्रों से द्वितीयक पोषक तत्वों जैसे सल्फर आदि की कमी सूचित की गई है। इसकी कमी की पूर्ति के लिए सल्फर की 20 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर मात्रा सिंगल सुपर फॉस्फेट या जिप्सम या पायराइट के द्वारा पंक्ति प्रतिस्थापन विधि से दी जा सकती है। सूक्ष्म पोषक तत्वों में ज़िंक की कमी की पूर्ति के लिए 10 से 25 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर ज़िंक सल्फेट के उपयोग की अनुसंशा की गई है।

खरपतवार प्रबंधन

उत्तर भारत में चने की खेती मुख्यतः बारानी फसल के रूप में की जाती है जिसके कारण पंक्ति से पंक्ति की दूरी अधिक रखते हैं। पंक्तियों के मध्य रिक्त स्थान खरपतवारों को उगने का खुला अवसर प्रदान करता है। ये खरपतवार फसल के साथ जल, स्थान एवं पोषक तत्वों के लिए प्रतिस्पर्धा कराते हैं जिससे फसल की उपज विपरीत रूप से प्रभावित होती है। प्याजी (एस्फ़ोडेलस टेन्यूइफोलियस) चने का मुख्य खरपतवार है जो पूरे वृद्धि काल में 2 से 3 बार चने की फसल को प्रभावित करता है। खरपतवारों की अनियंत्रित वृद्धि के कारण फसल की उपज में 40 से 60 प्रति शत तक की कमी आ सकती है इसलिए फसल–खरपतवार प्रतिस्पर्धा के क्रांतिक काल में खरपतवार नियंत्रण अत्यंत आवश्यक है। चने की किस्म एवं जलवायविक परिस्थितियों के अनुसार चने में फसल–खरपतवार प्रतिस्पर्धा का क्रांतिक काल 4 से 6 सप्ताह से लेकर 30 से 60 दिन तक हो सकता है।

चने में प्रभावी खरपतवार नियंत्रण के लिए दो निराई–गुड़ाइयाँ 30 और 60 दिन पर संस्तुत की गईं

हैं। श्रमिकों की अनुपलब्धता एवं अधिक लागत के कारण रासायनिक खरपतवार नियंत्रण के लिए फ्लुक्लोरालीन के 1.0 किग्रा/हे. सक्रिय तत्व अथवा पेंडिमेथालीन के 1.0 से 1.25 किग्रा/हे. सक्रिय तत्व का अंकुरण से पूर्व छिड़काव संस्तुत किया गया है।

रोग कीट प्रबंधन

चना प्रोटीन का एक समृद्ध स्रोत होने के कारण कीट और रोगों के प्रति अति संवेदनशील होता है। सामान्य तौर पर, मध्य और दक्षिणी भारत में चने की जड़ में लगने वाले रोग जैसे उकठा (फ्यूसैरियम विल्ट), कॉलर रोट और ड्राई रूट रोट) अधिक प्रभावित करते हैं जबकि उत्तरी, उत्तर–पश्चिमी और पूर्वी भारत में पर्ण रोग जैसे एस्कोकाइटा ब्लाइट, बोट्रीटिस ग्रे मोल्ड आदि अधिक महत्वपूर्ण है। सम्पूर्ण भारत में जहां कहीं भी चने की खेती की जाती है, चने का फली भेदक कीट (हेलिकोवर्पा आर्मिगेरा) फसल को सबसे गंभीर क्षति पहुंचाता है तथा उपज में कमी का मुख्य कारण है, जबकि ब्रुचिड्स (कैलोसोब्रुचस चिनेसिस) भंडारण में भारी क्षति का कारण है।

इन सभी रोगों एवं कीट के प्रभावी निदान के लिए प्रतिरोधी किस्मों जैसे JG 11, JAKI 9218, JG 130, KAK 2, JGK 1, JGK 2, PBG 1, BG 267, GNG 146) का चुनाव, तीन वर्ष का फसल अंतराल, ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई, बीजोपचार एवं खेत से पूर्ववर्ती फसल के अवशेषों का कुशल समाधान आदि क्रियाएँ संस्तुत की गई हैं।

चने की खोटाई

इस क्रिया में चने के शीर्ष में निकालने वाली कोपलों को काट देते हैं जिससे अधिक शाखाओं का विकास होता है और फसल में पुष्पन अवस्था शीघ्र आ जाती है। इस प्रकार चने की उपज में वृद्धि होती है। चने में खोटाई के लाभप्रद प्रभावों की चर्चा किसान कवि घाघ की कहावत में भी देखने को मिलती है–

गेहूं बाहें, चना दलाये।
धान गाहें, मक्का निराये।
ऊख कसाये।

अर्थात, खेत की भली प्रकार से जुताई (बांह) करने से गेहूं, खोंटने से चना, बार–बार पानी मिलने से धान, निराई–गुड़ाई करने से मक्का और गन्ने को कुछ समय पानी में भिगोने के बाद बोने से उसकी फसल अच्छी होती है।

कटाई और सस्योत्तर प्रबंधन

चने की समय पर कटाई दाने की गुणवत्ता बनाए रखने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। सामान्यतः चने की अधिकतर किस्में 130 से 150 दिन में पककर कटाई योग्य हो जाती हैं। तकनीकी रूप से जब दानों में नमी की मात्रा 14 से 16 प्रतिशत हो, चने की कटाई कर लेनी चाहिए। अनुभव के आधार पर जब पौधे सूखने लगते हैं, पौधे की पत्तियाँ हल्के हरे रंग से पीली होकर मुरझाने लगती हैं और झड़ने लगती हैं, फलियों का रंग हरे से हल्का पीला होना प्रारम्भ हो जाता है, तथा बीज सख्त महसूस होता है और फली के भीतर खड़खड़ाहट होती है, चने की कटाई का सबसे उपयुक्त संकेत है। कटाई के बाद पोधों को 5 से 6 दिनों के लिए धूप में सुखाया जाना चाहिए ताकि बीजों में नमी की मात्र 12 प्रतिशत से कम सुनिश्चित हो सके। आमतौर पर चने की गहाई (थ्रेसिंग) पौधे को डंडे आदि से पीटकर या पक्की सतह पर झाड़कर अथवा बैलों द्वारा रौंदकर की जाती है जिससे दानों को क्षति पहुँचती है और उसकी गुणवत्ता में कमी आ सकती है। क्षतिग्रस्त दानों में भंडारण के दौरान हानिकारक कीट एवं फफूंद आदि का प्रकोप अधिक होता है। इसलिए चने की यांत्रिक गहाई पावर थ्रेसर आदि से करने की संस्तुति की जाती है।

चना एवं अन्य दलहनी फसलों को 12 प्रतिशत से कम नमी पर वायुरोधक कंटेनर्स या पक्के कक्ष आदि में भंडारित किया जाना चाहिए। दीर्घकाल तक गुणवत्ता को बनाए रखने के लिए चने को समय–समय पर धूप में सुखाना, भंडारण में उचित वातन का प्रबंध तथा धूम्रन द्वारा कीटनाशन आदि महत्वपूर्ण हैं।

उपज

आदर्श दशाओं में उचित प्रक्षेत्र प्रबंधन के साथ देसी चने की किस्मों से लगभग 20–27 क्विंटल प्रति हेक्टेयर जबकि काबुली चने की किस्मों से 15–20 क्विंटल प्रति हेक्टेयर दाने की उपज प्राप्त हो सकती है।

पूसा पाकचोई–1 : अधिक उपज एवं मुनाफे हेतु विदेशी सब्जी की उत्तम प्रजाति

प्रवीन कुमार सिह, नविन्द्र सैनी, श्रवन सिंह, सचिन सुरोसे, इन्द्र मनि मिश्र, नीलम पटेल, सन्दीप कुमार लाल,
धिरेन्द प्रताप सिंह एवं जुगेन्दर कुमार
संरक्षित कृषि प्रौद्योगिकी केंद्र
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली 110 012

प्रजाति : पूसा पाकचोई – 1

पाकचोई सर्दियों के मौसम की एक पत्तेदार सब्जी फसल है और तेजी से भारत में एक लोकप्रिय विदेशी सब्जी बन गयी है। यह गोभी परिवार का एक सदस्य है, पाक चोई या बोकचोई एक प्रकार की चीनी गोभी है जो एक हल्के स्वाद वाली ओरिएंटल सब्जी है। इस प्रकार में सिर नहीं बनते हैं और हरे रंग की पत्ती वाले ब्लेड के साथ हल्का बल्बनुमा होता है। इस पत्तेदार सब्जी में एक अनोखा स्वाद है, थोड़ा सा पौष्टिक, थोड़ा मीठा और यह बेहद बहुमुखी है। पाक चोई को कच्चा खाया जा सकता है, तली हुई या हल्की उबली हुई और सोया सॉस के साथ भी परोसी जा सकती है। यह 21 सबसे अधिक पोषक तत्वों को प्रदान करने वाली सबसे अधिक पोषण वाली सब्जियों में से एक है। पाकचोई ओमेगा –3 एस, एंटीऑक्सीडेंट, खनिज ,जस्ता, प्रतिरक्षा को बढ़ाने, को समेटे हुए है। पाकचोई पोषक तत्वों की अच्छी आपूर्ति प्रदान करता है और कैलोरी में कम है। यह अच्छी तरह से एक स्वस्थ आहार के अनुकूल है। इसका पौधा रोपाई के 45–50 दिनों में कटाई के लिए तैयार हो जाता है। इसके पोधों के पत्ते आकर्षक हल्के हरे रंग और 500–650 ग्राम के औसत वजन के साथ मांसल और मुलायम होते हैं। पाकचोई सर्दियों के मौसम की फसल है जो 500–550 क्विंटल प्रति हेक्टेयर की औसत उपज देती है।

यह गमलों में उगाने के लिये भी उपयुक्त है अतः इसे गृह वाटिका एवं छत पर बागवानी में भी प्रयोग किया जा सकता है। इसे परिनगरीय खेती में भी अधिक लाभ हेतु सम्मिलित किया जा सकता है।

यह उच्च तापमान के लिए संवेदनशील है और केवल सर्दियों के मौसम के दौरान मैदानी इलाकों में उगाया जा सकता है।

प्रमुख सस्य क्रियाएं :

बीज बुवाई 15 सितंबर से 15 नवंबर तक नर्सरी बेडों में की जानी चाहिए। 25–30 दिनों के पुराने पौधे रोपाई को अच्छी तरह से तैयार खेत में रोपाई करें।

नर्सरी बुवाई के लिए, 500 ग्राम बीज का उपयोग करें और सीधी बुवाई के लिए, 3–4 किलोग्राम बीज प्रति हेक्टेयर।

पंक्ति से पंक्ति और पौधे से पौधे की दूरी 30–45 सेमी रखी जानी चाहिए।

खाद और उर्वरकः 40–50 टन गोबर की खाद को 125 किलोग्राम नत्रजन (275 किलोग्राम यूरिया) के साथ 62.5 किलोग्राम फॉस्फोरस (387.5 किलो सिंगल सुपरफॉस्फेट) और 62.5 किलोग्राम पोटाश (100 किलोग्राम पोटाश की 100 किलोग्राम) प्रति हेक्टेयर की दर से लगायें। रोपाई या बुवाई से पहले पूरे खेत की जुताई खाद, फॉस्फोरस, पोटाश और 1/3 नत्रजन को प्रयोग करें और शेष 2/3 नत्रजन को पोधों की वृद्धि के लिए रोपाई के 20 वें और 35 वें दिन बाद समान अनुपात में खड़ी फसल में प्रयोग करें।

सिंचाईः इस फसल को कम सिंचाई की आवश्यकता होती

है। हालाँकि हल्की सिंचाई 10–12 दिनों के अंतराल में दी जानी चाहिए।

अंतवर्ती क्रियाएं: पौध लगाने के बाद फसल को खरपतवार से मुक्त रखने के लिए एक या दो निराई या गुड़ाई करना आवश्यक है।

कटाई: पोधों को मिट्टी के स्तर से थोड़ा ऊपर कटाई की जाती है जो आमतौर पर रोपाई के 45 से 60 दिन बाद होती है।

उपज: औसतन 500–550 क्विंटल प्रति हेक्टेयर की पैदावार ली जा सकती है।

फसल की कीट एवं रोग के प्रति प्रतिरोधी क्षमता :

पौध संरक्षण: किसी गंभीर कीट एवं बीमारी का प्रकोप नहीं होता है। हालांकि, माहू और फ़्ली बीटल कभी–कभी नुकसान पहुंचा सकते हैं और मैलाथियान @ 2 मिली/ लीटर पानी का छिड़काव करके इसे नियंत्रित किया जा सकता है। कीटों को नियंत्रित करने के लिए पोधों के सक्रिय वनस्पतिक विकास के दौरान 10 दिनों के अंतराल पर एक या दो बार (नीम का तेल)नीम बीज अक्र का 5% की दर से प्रयोग करें।

अन्य मुख्य विशेषताएं :

इसका पौधा रोपाई के 45–50 दिनों में कटाई के लिए तैयार हो जाता है। इसके पोधों के पत्ते आकर्षक हल्के हरे रंग और 500–650 ग्राम के औसत वजन के साथ मांसल और मुलायम होते हैं। पाकचोई सर्दियों के मौसम की फसल है जो 500–550 क्विंटल प्रति हेक्टेयर की औसत उपज देती है।

यह उच्च तापमान के लिए संवेदनशील है और केवल सर्दियों के मौसम के दौरान मैदानी इलाकों में उगाया जा सकता है।

पाकचोई आमतौर पर बाजार में महंगी सब्जी फसल होती है और इसको कम लागत में पैदा कर के अधिक मुनाफा कमाया जा सकता है।

संरक्षित खेती के लिए नया पूसा गोल्डन चेरी टमाटर–2

जुगेन्द्र कुमार, पी के सिंह, ज़ाकिर हुसैन, एवं सेल्वाकुमार आर
संरक्षित कृषि प्रौद्योगिकी केंद्र
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली 110 012

पूसा गोल्डन चेरी टमाटर–2 की मुख्य विशेषताएं:–

- यह पूसा संस्थान द्वारा विकसित पहली स्वदेशी गोल्डन पीली चेरी टमाटर किस्म है जो प्राकृतिक रूप से हवादार पॉलीहाउस तथा कम लागत वाली संरक्षित खेती के लिए उपयुक्त है।
- यह एक अनियमित बढ़वार वाली किस्म हैं। इसमें प्रति पौधे औसतन 9–10 फलों के गुच्छे होते हैं और प्रति गुच्छा लगभग 25–35 चेरी टमाटर लगते हैं।
- फलों का औसत वजन लगभग 7–8 ग्राम होता है तथा औसत फल उपज 3–4.5 किग्रा प्रति पौधा होती हैं। इस प्रकार फसल की उपज क्षमता 9 –11 टन प्रति 1000 वर्गमीटर होती है।
- पहली कटाई के लिए फल लगभग 75–80 दिनों में तैयार हो जाते हैं और फसल लगभग 9–10 महीने तक चलती है।
- फलों में प्रति 100 ग्राम ताजा वजन के आधार पर 13.02 मिलीग्राम कैरोटीन, 18.3 मिलीग्राम एस्कॉर्बिक एसिड, 0.33% अम्लता और मिठास (टीएसएस) 90 ब्रिक्स होते हैं।

इस अद्वितीय पोषक तत्व से भरपूर किस्म को संरक्षित कृषि प्रौद्योगिकी केंद्र और सब्जी विज्ञान विभाग, भा.कृ.अनु.प. – भा.कृ.अनु.सं., पूसा, नई दिल्ली द्वारा संरक्षित परिस्थितियों या संरचना के तहत खेती के लिए विकसित किया गया है। यह बढ़वार के हिसाब से अनियमित बढ़वार वाली किस्म है, पहली तुड़ाई रोपाई के 75–80 दिनों के बाद शुरू होती है और क्षेत्र की जलवायु स्थिति के आधार पर 270–300 दिनों तक जारी रहती है। फल गोल, आकर्षक सुनहरे पीले रंग के, गुच्छे में तथा पतली एवं चिकनी सतह वाले होते हैं। इसके फल एक समान रूप से पकते हैं। आकर्षक सुनहरे पीले फलों में मिठास (टीएसएस) 90 ब्रिक्स और कैरोटीन 13.02 मिलीग्राम प्रति 100 ग्राम होती है। फलों का औसत वजन लगभग 7–8 ग्राम होता है, लगभग औसत फल उपज 3–4.5 किलोग्राम प्रति पौधा तथा 9–11 टन प्रति 1000 वर्ग मीटर होती हैं।

बीज को जुलाई–अगस्त में मिट्टी रहित माध्यम का उपयोग करके कीट रोधी नर्सरी में प्लग–ट्रे में बोया जाना चाहिए। 25–30 दिन के बाद पौध का रोपण संरक्षित संरचना में करना चाहिए। हरित गृह में फसल को उर्ध्वाधर रूप से प्रशिक्षित किया जाना चाहिए और बेहतर वृद्धि और उपज के लिए नियमित रूप से छंटाई की जानी चाहिए। इस किस्म को सामान्य रूप से उपजाऊ मिट्टी की आवश्यकता होती हैं। सर्दियों के मौसम में ग्रीन हाउस में अतिरिक्त परागण की आवश्यकता होती है जिसके लिए सुबह के समय इलेक्ट्रिक वाइब्रेटर या एयर ब्लोअर का उपयोग करके किया जाता है। 1000 वर्गमीटर ग्रीन हाउस में व्यावसायिक फसल उगाने के लिए 10 ग्राम बीज पर्याप्त है।

पूसा गोल्डन चेरी टमाटर–2

फसल उत्पादन :

जलवायुः इस किस्म की वृद्धि और विकास के लिए अपेक्षाकृत गर्म मौसम की आवश्यकता होती है। फलों के विकास और रंग विकास के लिए आदर्श रात और दिन का तापमान 20–25^0 C है।

मिट्टीः अच्छी जल निकासी वाली बलुई दोमट मिट्टी फसल उगाने के लिए आदर्श होती है। अच्छे उत्पादन के लिए पी. एच. मान 6 से 7 के बीच होना आवश्यक है।

बुवाई का समयः पूरी तरह से नियंत्रित पर्यावरण पॉलीहाउस में इसे साल भर उगाया जा सकता है, जबकि प्राकृतिक रूप से हवादार पॉलीहाउस / कम लागत वाले पॉलीहाउस संरचनाओं में सितंबर में रोपाई की जाती है और फसल मई तक चल सकती है।

बीज दरः 125 ग्राम/हेक्टेयर के हिसाब से बीज की आवश्यकता होती हैं।

नर्सरी उगानाः नर्सरी उगाने के लिए बीज को जुलाई–अगस्त में मिट्टी रहित माध्यम (कोकोपीट, परलाइट और वर्मीक्यूलाइट मिश्रण) का उपयोग करके कीट रोधी नर्सरी में प्लग–ट्रे में बोया जाना चाहिए, जिससे पौधा रोगमुक्त और स्वस्थ पौध तैयार हो सके। प्लग–ट्रे को पॉलीहाउस या कीट अवरोधक नेट हाउस के अंदर रखा जाना चाहिए। थायरम 3 ग्राम प्रति किग्रा बीज के साथ उपचार करने के बाद जुलाई के दूसरे सप्ताह से अगस्त तक हर छेद में एक बीज बोया जाना चाहिए। बीज बोने के तुरंत बाद कैप्टाफ 2 ग्राम प्रति लीटर पानी के साथ पानी देकर हल्की सिंचाई करें। उसके बाद ट्रे को एक दूसरे के उपर रख दिया जाता है और ऊपर वाले को एक खाली ट्रे से ढक दिया जाता है। बुवाई के चार–पांच दिनों में बीज अंकुरित होने लगते हैं और फिर बेंचों या फर्श पर ट्रे बिछा दिए जाते हैं। मिट्टी रहित माध्यम में पोषक तत्वों को पानी में घुलनशील उर्वरकों N:P:K (1:1:1) 16:16:16 ग्रेड 2 ग्राम/लीटर के रूप में सप्ताह में एक बार महीन स्प्रिंकलर के माध्यम से पोषक तत्वों के अनुप्रयोग में एकरूपता बनाए रखने के लिए लगाया जाता है। बुवाई के 22–25 दिनों के बाद जब अंकुर 10–12 सेमी. लंबे और चार पत्ते निकल आएं तब दो दिनों तक सिंचाई रोकते हुए मिट्टी रहित माध्यम को सख्त होने दें। रोपाई से पहले मिट्टी रहित माध्यम को सख्त करना रोपाई के समय पौधे को लगने वाले झटके को कम करने में बहुत प्रभावी होता है और इसके परिणामस्वरूप बेहतर फसल होती है।

रोपण

रोपाई 0.75 मीटर चौड़ाई के उभरे हुए तल (बेड) पर दोनों किनारों से 10 सें.मी. अंदर की तरफ की जानी चाहिए। दो उभरे हुए तलों (बेड) के बीच की दूरी 30 सें.मी. होनी चाहिए। पोधों को उठी हुई तल के दोनों ओर पंक्ति के भीतर 0.60 मीटर की दूरी पर रोपा जाना चाहिए। इसे पानी और उर्वरकों के कुशल उपयोग के लिए ड्रिप सिंचाई प्रणाली के तहत लगाया जाना चाहिए।

खाद और उर्वरक

संरक्षित वातावरण की मिट्टी की उर्वरता को निर्धारित करने के लिए मृदा परीक्षण किया जाना चाहिए और जब भी आवश्यक हो पोषक तत्वों की कमी को पूरा किया जाना चाहिए। सामान्य तौर पर, लगभग 25–30 मीट्रिक टन प्रति हेक्टेयर अच्छी तरह से सड़ी हुई खाद को भूमि की तैयारी के समय मिट्टी में डालना चाहिए। रोपाई से पहले भूमि की तैयारी के समय 80 किलोग्राम फास्फोरस और 90 किलोग्राम पोटाश प्रति हेक्टयर मिलाया जाता है। 150 किग्रा नाइट्रोजन को विभाजित मात्रा में, एक तिहाई रोपाई के समय और अन्य दो तिहाई को तीन बार में, पहली रोपाई के 25–30 दिन बाद, दूसरी रोपाई के 50–60 दिनों के बाद, तीसरी पहली बार फल तोड़ने के बाद डालनी चाहिए। सूक्ष्म पोषक तत्वों (विशेष रूप से कैल्शियम और बोरॉन) का मिश्रण भी फूल आने के समय 0.5% पानी के घोल में डालना चाहिए।

सिंचाई

अत्यधिक पानी हानिकारक होने के कारण केवल नमी की आपूर्ति बनाए रखना आवश्यक है। फूल आने और फलने के समय पानी अति आवश्यक है। पर्याप्त नमी बेहतर रंग विकास में भी मदद करती है। सर्दियों के मौसम में 8–10

दिनों के अंतराल पर सिंचाई करें जबकि गर्मी के महीनों में मौसम की स्थिति के आधार पर 1–2 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करें। यदि संभव हो तो कुशल सिंचाई और उर्वरता के लिए ड्रिप सुविधा स्थापित की जानी चाहिए। काली पॉलिथीन गीली घास से मल्चिंग करने से मिट्टी की नमी के संरक्षण और खरपतवार प्रबंधन में मदद मिलती है।

खरपतवार प्रबंधन

टमाटर के उत्पादन में खरपतवार अकसर एक सीमित कारक होते हैं क्योंकि वे प्रकाश, पानी, पोषक तत्व एवं स्थान का आदि का दोहन करते हैं। कीट और बीमारियों को फैलाते हैं। खरपतवारों को नियंत्रित करने के लिए जितनी बार आवश्यक हो बार–बार निराई–गुड़ाई करनी चाहिए। मल्चिंग और रोपाई से पहले टमाटर की क्यारी को 2 मि.ली./लीटर पानी के घोल से गीला कर देना चाहिए ताकि खरपतवारों का नियन्त्रण हो सके।

प्रशिक्षण, छंटाई और ट्रेलिसिंग

संरक्षित कृषि में टमाटर के लिए स्टेकिंग (ऊपर चढ़ने के लिए सहायता देना) एक महत्वपूर्ण क्रिया है। रोपाई के 20 से 25 दिन बाद स्टेकिंग करनी चाहिए। पौधे को लंबवत धागे पर ढीला बांधना चाहिए। समय पर लगाए गए पौधे अधिक और बेहतर गुणवत्ता वाले फल पैदा करते हैं। केवल एक तने को बनाए रखने के लिए सभी पार्श्व शाखाओं को प्रारंभिक चरण में हटा दिया जाना चाहिए। पोधों को प्लास्टिक के तार द्वारा या आधार पर प्लास्टिक क्लिप के साथ सुतली द्वारा समर्थित किया जाता है, जो ऊपर पंक्ति के साथ–साथ फैली लोहे या प्लास्टिक की तार से बांध दिये जाते हैं। जो 8 से 10 फीट ऊपर, और मजबूती से संरचना के साथ समर्थित होती है। पौधे का तना 1 इंच व्यास के गोल प्लास्टिक क्लिप में जुड़ी हुई सुतली के साथ जोड़ दिया जाता है। पार्श्व प्ररोह की नियमित छंटाई फसल की पूरी अवधि तक की जानी चाहिए। पहली बार फल तोड़ने के बाद, जमीन को छूने वाली पत्तियों (जमीन से एक फीट तक) को हटा देना चाहिए जिससे वायु परिसंचरण अच्छी तरह हो सके और रोग का प्रकोप कम हो।

परागण

चूंकि टमाटर एक स्व–परागण वाली फसल है जिसमें उभयलिंगी फूल होते हैं, इसलिए सामान्य फूल और फलन धूप के मौसम में होते हैं, हालांकि धूमिल या बादल वाले मौसम में बेहतर फलन के लिए बिजली का वाइब्रेटर या हवा की धौकनी या प्रत्येक पौधे को हिलाकर परागण की क्रिया को बढ़ाया जाता हैं। इन सभी चीजों का प्रयोग प्रातः 10 से 11 बजे तथा दोपहर 2 से 3 बजे के बीच किया जाना अधिक प्रभावी होता हैं।

उत्पादन

पहली तुड़ाई रोपाई के 80–85 दिनों के बाद शुरू होती है। तुड़ाई की अवस्था इस बात पर निर्भर करती हैं कि ग्रीनहाउस से बाजार की दूरी कितनी हैं। लंबी दूरी के परिवहन के लिए परिपक्व हरी अवस्था में टमाटर की तुड़ाई की जाती है। कम दूरी के परिवहन के लिए फलों को पीली या रंग बदलने की अवस्था में तोड़ा जाता है तथा बाजार समीप होने पर पूर्ण रूप से परिपक्व अवस्था में तुड़ाई कि जाती हैं।

औसत उपज

उपज जलवायु कारकों और फसल रखरखाव क्रियाओं पर निर्भर करती है। यह औसतन 1000 वर्ग मीटर पॉलीहाउस क्षेत्र में 90–100 क्विंटल फल देती हैं।

फसल संरक्षण

संरक्षित संरचनाओं में गर्म आर्द्र स्थिति और प्रचुर मात्रा में भोजन कीट विकास के लिए एक उत्कृष्ट स्थायी वातावरण प्रदान करता है। संरक्षित स्थिति में कीटों के प्रबंधन के लिए स्वच्छता, मिट्टी का सौरकरण, मल्चिंग और धूमन किया जाता है। पॉलीहाउस में टमाटर के प्रमुख कीट सफेद मक्खियाँ और मकड़ियां होती हैं, जो पॉलीहाउस में बार–बार प्रवेश करने वाले श्रमिकों के साथ अंदर आते हैं। पॉलीहाउस में नेमाटोड भी एक बड़ी समस्या है। आवरण सामग्री के रूप में उपयोग की जाने वाली पॉलिथीन 200 माइक्रोन मोटाई और पराबैंगनी रूप से स्थिर होनी चाहिए। इसी प्रकार कीट रोधक जाल 40 मेश

का होना चाहिए। प्रवेश के लिए बने दोहरे दरवाजे हवा के साथ आने वाले कीटों को रोकने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। हमारा मुख्य जोर संरक्षित संरचना के अंदर कीटों के प्रवेश को रोकने पर होना चाहिए। रोपाई के लिए पौध को संरक्षित वातावरण में उगाया जाना चाहिए। निचली या क्षतिग्रस्त पत्तियों को हटा देना चाहिए ताकि उचित वायुसंचार के लिए जमीन साफ हो और कीटों के प्रसार से भी बचा जा सके। संरक्षित संरचनाओ में कीटों जैसे सफ़ेद माखियों, एफिड्स और लीफ माइनर आदि के नियंत्रण के लिए, पीले चिपचिपे 5 कार्ड (8 ″ × 12″) प्रति 100 वर्ग मीटर में रखने चाहिए। फसल के ऊपर लगभग 4″ X 6″ के पीले चिपचिपे कार्ड/जाल डोरी की सहायता से लटकाएं। जैसे–जैसे फसल बढ़ती है, कार्ड को ऊपर ले जाया जा सकता है। जब लगभग 70% से अधिक क्षेत्र में कीट चिपक जाए तब कार्ड बदल दें। कीट और रोग के प्रभावी प्रबंधन के लिए एकीकृत कीट प्रबंधन (आईपीएम) रणनीतियों का पालन किया जाना चाहिए। डाइकोफोल 2 मिली प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव मकड़ियों के नियंत्रण के लिए प्रभावी होता हैं, सफेद मक्खियों को नियंत्रित करने के लिए ट्राइज़ोफॉस 1 मिली/ 3 लीटर पानी आवश्यक होता हैं। फफूंद जनित रोगों के लिए 1 ग्राम कार्बेन्डाजिम और 1 ग्राम मैनकोजेब प्रति लीटर पानी के घोल में मिलाकर प्रयोग कर सकते हैं।

किसान उत्पादक संगठन (एफ.पी.ओ.): किसान सशक्तिकरण का एक माध्यम

कुमुद शुक्ला[1], मनमीत कौर[2] एवं हरदेव राम[3]

[1]सहायक आचार्य, कृषि विभाग, गलगोटियाँ विश्वविद्यालय, गौतम बुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश
[2]सहायक आचार्य, कृषि महाविद्यालय, स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर
[3]वैज्ञानिक, सस्य विज्ञान, राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

प्राचीन काल से कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की धुरी रही है और भारतीय कृषकों को सदैव अन्नदाता की श्रेणी में रखा गया है। परन्तु देश में किसानों की स्थिति दिन प्रतिदिन चिंताजनक होती जा रही है। इसके निदान के लिए यदि देखा जाय तो समय–समय पर भारत सरकार द्वारा किसानों को स्वालम्बी और सशक्त बनाने के लिए कई कार्यक्रम चलाये गये हैं। भारतीय कृषि मुख्यतः उत्पादन उन्मुख है परन्तु उत्पादन के साथ ही साथ यह भी आवश्यक है कि फसल को बाजार में उचित दाम पर बेचा जा सके। आज हमारे देश में कृषक कृषि उत्पादन से ज्यादा उसके विपणन के लिये बाजार में कठिनाइयों का सामना करते हैं। देश की कुल फसल क्षेत्र का 86% हिस्सा छोटे और सीमांत किसानों का है और कुल उत्पादन में इन किसानों का हिस्सा 44% है। इस स्थिति को देखते हुए भारतीय कृषि में बदलाव की आवश्यकता है जिसमें बड़े स्तर पर संरचनात्मक सुधार और परिवर्तन जैसी पहल की जाये। वर्तमान में छोटे और सीमांत किसानों को किसान संगठन से जुड़कर काम करने के लिये प्रोत्साहित किया जा रहा है। इस क्षेत्र में किसान उत्पादक संगठन (एफ.पी.ओ.) जैसी भारत सरकार की परियोजना को बडे स्तर पर लाने की पुरजोर कोशिश की जा रही है। आने वाले समय में एफ.पी.ओ.के बढते दूरगामी प्रभाव को भारतीय कृषक व्यवस्था के सुधार में मील का पत्थर साबित किया जा रहा है। यहाँ तक की कोरोना संकट के दौर में किसान उत्पादन संगठनों की सफलता को सरकार ने भी सराहा है।

एफ.पी.ओ. क्या है ?

एफ.पी.ओ. यानि किसान उत्पादक संगठन किसानों का एक समूह होता है जो कंपनी एक्ट, 2013 के जरिये अपने आप को रजिस्टर्ड कराता है। मुख्यतः एफ.पी.ओ. लघु एंव सीमान्त किसानों का एक समूह है इससे जुडे किसानों को न सिर्फ अपनी उपज के लिये बाजार मिलता है बल्कि खेत में लगने वाले खाद, बीज, दवाइयों और कृषि यंत्रो की खरीद भी सस्ती मिलती है। बाजार की सस्ती सेवाये सीधे मिलने से किसानों को बिचौलियों के मकड़जाल से भी मुक्ति मिलती है। इस संगठन का मुख्य उद्देश्य किसानों की हर संभव मदद करना है। छोटे किसानों को सरकारी सहायता आदि इस तरह से नहीं मिल पाती है जैसे कि बडे किसान उठा लेते हैं। भारतीय कृषि विपणन में दलालों की एक लम्बी चेन होती है जो बिल्कुल भी पारदर्शी तरीके से काम नहीं करती है जिसकी वजह से किसानों को उनके उत्पादों का बहुत कम दाम मिल पाता है। इसके साथ ही उपभोक्ता जितना पैसा उस उत्पाद के लिये देता है उसका बहुत कम हिस्सा किसानों तक पहुँच पाता है। संगठन की ताकत से किसान अपने उपज को ज्यादा मूल्य पर बेच पाने में सफलता प्राप्त करते हैं। केंद्र सरकार द्वारा किसान और कृषि को आगे बढाने के लिये अगले पांच साल के लिये 5000 करोड़ रूपये के आर्थिक बजट की घोषणा की गई है जिसमें किसानों का एफ.पी.ओ.बनाना और उन्हे आर्थिक सहायता प्रदान कर समृद्ध बनाना होगा । सरकार ने 2019–20 से लेकर 2023–24 तक 10,000 एफ.पी.ओ. बनाने की घोषणा की है। इसका रजिस्ट्रेशन (पंजीकरण) कंपनी एक्ट के तहत होगा इसलिये इसमें वो सारे फायदे मिलेंगे जो एक कंपनी को मिलते हैं।

देश में एफ.पी.ओ. की संख्या

केंद्र सरकार के कृषि एंव किसान कल्याण मंत्रालय द्वारा एस.एफ.ए.सी. (SFAC) को नोडल एजेंसी के रूप में

देशभर में एफ.पी.ओ.की विभिन्न परियोजनाओं को बढ़ावा देने के लिये 2011 से चुना गया है। केंद्र सरकार, राज्य सरकारें और अन्य एजेंसियां इसके अंतर्गत कई कार्यक्रम चला रही हैं। एफ.पी.ओ.के गठन और इसकी संख्या को बढाने के लिये अभी एस.एफ.ए.सी. (SFAC) एंव नाबार्ड (NABARD) मिल कर काम कर रही थी लेकिन सरकार इसे और बढाना चाहती है जिसके लिये राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम (NCDC) को भी जिम्मेदारी सौंपी गयी है। देश में अभी तक करीब 5000 एफ.पी.ओ.रजिस्टर्ड हो चुके है। ये एफ.पी.ओ.सरकार की विभिन्न पहलों के तहत गठित हुए हैं जिसमें भारत सरकार की एस.एफ.ए.सी., राज्य सरकारें और पहले 8–10 वर्षो में नाबार्ड के साथ अन्य संगठन भी शामिल है। मैनेज रिपोर्ट, 2019 के अनुसार एफ.पी.ओ.अभी अपनी शुरूआती चरण में हैं जिसमें से 30% एफ.पी.ओ. सक्रिय रूप से काम कर रहे हैं, लगभग 20% संघर्षशील हैं और 50% अभी संगठन बनाने की प्रक्रिया में हैं। एफ.पी.ओ.को प्रमोट करने वाली एजेंसी निम्नवत हैः

क्रं.सं.	प्रमोटिंग एजेंसी	संख्या
1.	एस.एफ.ए .सी.	902
2.	नाबार्ड	2086
3.	राज्य सरकार (आर.के.वी.वाई. के अर्न्तगत)	510
4.	एन.आर.एल.एम.	131
5.	अन्य एजेंसियॉ	1371
	कुल	**5000**

स्रोतः एस.एफ.ए.सी.10000 एफ.पी.ओ.के प्रचार के लिए रणनीति पत्र, 2021

एफ.पी.ओ.संचालन का त्रिस्तरीय मॉडल

एफ.पी.ओ. संचालन की जिम्मेदारी एस.एफ.ए.सी. को दी गयी है जिसमें 10,000 एफ.पी.ओ. के गठन के लिये एक विश्वस्तरीय मॉडल प्रस्तावित किया गया है। एस.एफ.ए.सी. के अंतर्गत एफ.पी.ओ. परियोजना का निष्पादन और निरीक्षण एक राष्ट्रीय परियोजना प्रबंधन एजेंसी (NPMA) के द्वारा किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त फील्ड स्तर पर निष्पादन के लिये क्लस्टर आधारित व्यावसायिक संगठन (CBBO) की क्षमता के आधार पर चयन किया जायेगा। प्रत्येक राज्य से एक या एक से अधिक सी.बी.बी.ओ. चुने जायेंगे। एन.पी.एम.ए. जरूरी तकनीकी और व्यावसायिक क्षमता के विकास के लिये सी.बी.बी.ओ. को सहायता प्रदान करेगी और इन सभी की निगरानी और संचालन एस.एफ.ए.सी. के अर्न्तगत किया जायेगा।

त्रिस्तरीय मॉडल (एफ.पी.ओ.)

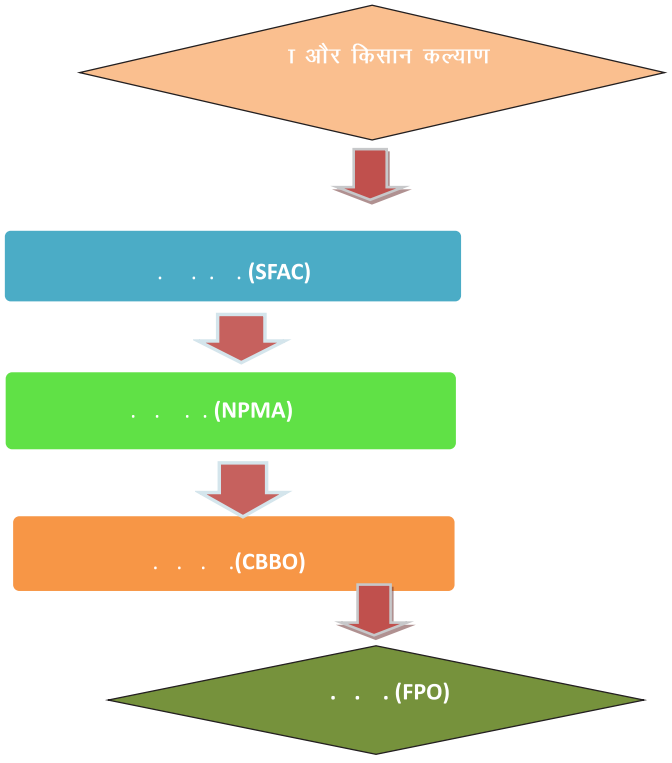

एफ.पी.ओ. के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण नियम

1. अगर संगठन मैदानी क्षेत्र में काम कर रहा है तो कम से कम 300 किसान उसमें जुड़े होने चाहिये। पहले यह संख्या 1000 थी।
2. पहाड़ी क्षेत्र में एक कम्पनी के साथ 100 किसानों का जुड़ना जरूरी है। प्रत्येक कम्पनी में 10 बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स होंगे।
3. यह क्लस्टर बेस्ड बिजनेस आर्गेनाइजेंशस (सी.बी.बी.ओ.) के तहत बनाया जाना चाहिये। राज्य और जिला स्तर पर इसे लागू करने के लिये एजेंसी होनी चाहिए।
4. इसे 'एक जिला एक उत्पाद' के तहत बढ़ावा दिया

जाना चाहिये। इसी के साथ विपणन, ब्रॉडिंग, प्रोसेसिंग और एक्सपोर्ट पर भी जोर देना चाहिये।

5. एफ.पी.ओ. उत्पाद सम्बन्धित पर्याप्त प्रशिक्षण और हैंड होल्डिंग सी.बी.बी.ओ. के स्तर से प्रदान किया जाना चाहिये।
6. एफ.पी.ओ.के निर्माण में उन जिलों को प्राथमिकता दी जाती है जो एस्पीरेशनल होते है और कम से कम एक ब्लाक में एक एफ.पी.ओ.होना चाहिये।
7. नाबार्ड कंसल्टेंसी सर्विसेज कम्पनी (नाबार्ड के अर्न्तगत) एफ.पी.ओ.का काम देख कर रेटिंग करेगी और इसके आधार पर ही अनुदान मिलेगा।

एफ.पी.ओ.का आवेदन और क्रियान्वयन

एक एफ.पी.ओ.को सुव्यवस्थित चलाने के लिये उस संगठन में किसान होते हैं। किसानों का यह संगठन एग्रीकलचर कंपनी के रूप में कार्य करता है और संगठन की सभी जिम्मेदारियों को आपस में बॉट लिया जाता है। इसमें यदि 10 लोगों को बोर्ड मेम्बर बनाया गया है तो एक बोर्ड मेंबर के अंदर 30 किसानों का होना आवश्यक है। यदि किसी गॉव के किसान बिना किसी बाहरी एजेंसी के, स्वंय तालमेल के साथ एफ.पी.ओ. बनाना चाहते हैं तो इसकी भी प्रक्रिया आसान है। किसानों को अपने संगठन का एक नाम रखकर उसे कंपनी एक्ट के तहत रजिस्टर करवाना होता है। इसके साथ ही समस्त सदस्य भारत के नागरिक और किसान वर्ग के होने चाहिये। इसका अलग से आवेदन करते समय आधार कार्ड, स्थायी प्रमाण पत्र, जमीनी दस्तावेज, बैंक खाता, पासपोर्ट साइज फोटो और रजिस्टर्ड मोबाइल नंबर होना चाहिये। संगठन को आवेदन के लिये आधिकारिक एस.एफ.ए.सी. की वेबसाइट पर सारे दस्तावेज जमा करने होंगे। जोकि सरकार के पास पहुँच जायेंगे।

सरकार द्वारा मिलने वाली सहायता और निरीक्षण

जो किसान उत्पादक संगठन अपने किसानों के हितों में 3 साल तक लगातार काम करता है उसे सरकार से 15 लाख रूपये पी.एफ. किसान एफ.पी.ओ. योजना के तहत मिलते हैं। ये सहायता किसानों को उनकी खेती के खर्चों के निपटारे के लिये दी जाती है। जिसमें खेत की तैयारी, बीजों की खरीद, सिचांई व्यवस्था और कृषि उपकरणों से लेकर खाद, उर्वरक, कीटनाशक तक के सभी खर्चे शामिल है। आर्थिक सहायता उपलब्ध करवाने के लिये नाबार्ड किसान उत्पादक संगठनों की निगरानी करता है। जिसमें यह देखा जाता है कि किसान उत्पादक संगठन के जरिये कितने किसानों को क्या फायदा पहुंच रहा है। बाजार में किसानों की पहुँच को किस प्रकार आसान बनाया जा रहा है, कागजी कार्यों को किस प्रकार निपटाया जाता है, किसानों को सस्ती दरों पर सामान उपलब्ध हो रहा है या नहीं। इन सभी बातों पर अमल करके किसान उत्पादक संगठनों को रेटिंग प्रदान की जाती है। जिसके बाद किसान उत्पादक संगठनों के पास सरकार द्वारा जारी आर्थिक अनुदान पहुँचना शुरू होता है।

एफ.पी.ओ.के मुख्य लाभ

1. संगठन में किसानों को सौदेबाजी की शक्ति मिलती है।
2. समूह में बहुलता से व्यापार करने पर भण्डारण, परिवहन और प्रोसेसिंग के खर्चों में बचत होती है।
3. एफ.पी.ओ.के गठन से ग्रीन हाउस, कृषि मशीनीकरण, शीत भण्डारण इत्यादि की सुविधाऐं मिलती हैं।
4. समूह के किसान कस्टम केन्द्र आदि शूरू कर अपने व्यापार का विस्तार कर सकता है।
5. इसके सदस्य किसान आदानों और सेवाओं का उपयोग रियायती दरों पर ले सकते है।
6. भारत में मौजूद लघु उद्योगों का जो लाभ मिलते हैं वे सब लाभ इन संगठनों को भी मिलते हैं। परन्तु इनको एक अतिरिक्त लाभ यह है कि इन पर कोओपरेटिव एक्ट के नियम लागू नहीं होते हैं।

एफ.पी.ओ. गठन में प्रमुख चुनौतियाँ

नाबार्ड द्वारा किये गये अध्ययनों से यह पाया गया है कि एफ.पी.ओ.किसानों की आय को बढ़ाने में सकारात्मक भूमिका को निभाते हैं। परन्तु इसके निर्माण में मुख्य चुनौतियॉ निम्ननुसार हैः

1. **व्यावसायिक अनुभव की कमी** : प्रशिक्षित और व्यवसायिक रूप से योग्य सी.ई.ओ. और दूसरे बोर्ड मेंबर वर्तमान के ग्रामीण क्षेत्र में उपलब्ध होना मुश्किल

होता है जबकि सी.बी.बी.ओ. की देखरेख में यह कुशलतापूर्वक होना चाहिये।

2. **पिछडी आर्थिक स्थिति** : किसी भी संस्था की शुरूआत के लिये मजबूत आर्थिक स्थिति की आवश्यकता होती है। जबकि एफ.पी.ओ. ज्यादातर छोटे किसानों द्वारा चलाया जाता है जिनके पास संसाधनों की कमी होती है।

3. **सुचारू ऋण व्यवस्था स्थिति** : एस.एफ.ए.सी. द्वारा प्रदान किये जाने वाली किफायती ऋण क्रेडिट गारंटी कवर केवल एफ.पी.ओ.निर्माता को मिलता है जिसमें 500 न्यूनतम शेयर धारक होने चाहिये। इस नियम के तहत स्वंय पंजीकृत और छोटे एफ.पी.ओ.को क्रेडिट गारंटी योजना के लाभों की सुविधा नहीं मिल पाती है।

4. **इंश्योरेंस की कमी** : इस समय एफ.पी.ओ.के व्यावासायिक जोखिमों को कवर करने के लिये कोई भी प्रावधान नहीं है।

5. **विपणन में सफलता की कमी** : उचित मूल्यों पर उत्पादों की मार्केटिंग किसी भी एफ.पी.ओ.के लिये सबसे महत्वपूर्ण है। इनपुट कीमतो को बड़े पैमाने पर कॉर्पोरेट उत्पादकों द्वारा निश्चित किया जाता है। इनपुट और आउटपुट कीमतों में बाजार प्रक्रियाओं के जटिल तालमेल के कारण किसानों को घाटा होता है।

6. **बुनियादी ढांचे का अभाव** : एफ.पी.ओ. की परिवहन सुविधाओं, भंडारण, मूल्यांकन और प्रसंस्करण, ब्रांड निर्माण और विपणन जैसे समेकन के लिये बुनियादी ढांचे की कमी होती है। इसके साथ ही कॉर्पोरेट फार्मिंग में उत्पादकों को आमतौर पर नियमों से बाहर रखा जाता है।

7. **जागरूकता की कमीः** सगठन के संभावित लाभों के विषय में किसानों के बीच जागरूकता की कमी होती है। इसके अलावा उनमें गठन संम्बन्धित तकनीकी ज्ञान व नियमों की जानकारी का भी आभाव होता है।

आज के समय में एफ.पी.ओ.को किसानों की आय बढाने और कृषि विकास को बढ़ावा देने के लिये भविष्य का तरीका माना जा रहा है। क्योकि भारत में छोटे और सीमांत किसानों की संख्या 86 फीसदी है जिनके पास औसतन 1.1 हेक्टेयर से भी कम जोत है। आमतौर पर इन किसानों को प्रौद्योगिकी, उच्च गुणवत्ता के बीज, उर्वरक, कीटनाशक और समुचित वित्त की समस्यायें झेलनी पडती हैं। आजकल एफ.पी.ओ.को उपरोक्त लिखित इन सभी समस्याओं का समाधान माना जा रहा है। परन्तु एफ.पी.ओ. के बेहतर संवर्धन के लिये भविष्य की रणनीतियों में प्रभावी हस्तक्षेप की जरूरत है जिसमें कि जन जागरूकता निर्माण, संस्था विकास और डिजिटल निगरानी मुख्य है। भारत सरकार के नीतिगत ढांचे के अनुरूप राज्य सरकारें भी एफ.पी.ओ.संवर्धन और उन्हे मजबूत करने के लिये उपयुक्त लचीली नीति बना सकती हैं ताकि किसानों को व्यावसायिक रूप से उद्यमी बनाया जा सके। इसके अतिरिक्त आवश्यक विभिन्न लाइसेंस जारी करने की प्रणाली को राज्यव्यापी सिंगल विंडो लाइसेंस प्रणाली स्थापित कर सरल बनाया जा सकता है।

प्राकृतिक एवं जैविक खेती–मूलभूत सिद्धांत, महत्व एवं उपयोगिता

जितेन्द्र कुमार, प्रमोद कुमार यादव एवं धर्मबीर यादव
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय क्षेत्रीय अनुसंधान केंद्र, बावल

आज की कृषि प्रणाली में कृषि रसायनों का प्रयोग प्रतिदिन बढता जा रहा है, जिसके दुष्परिणाम विभिन्न रूपों में आज समाज के सामने आने से जैविक खेती एक प्रासंगिक विषय बन जाता है। जैविक एवं प्राकृतिक खेती का साधारण अर्थ है कि प्रकृति से तालमेल बैठाकर खेती–बाड़ी करना। पिछले दो दशकों में भारत में कृषि रसायनों का प्रयोग लगातार बढता जा रहा है। जिनके परिणाम स्वरूप यहाँ की भूमि, जल एवं वायु के साथ–साथ मानवीय विचारों का पर्यावरण बिगड़ता जा रहा है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि इन सभी समस्याओं का निदान जैविक पद्दति पर आधारित खेती में ही निहित है।

जैविक/प्राकृतिक खेती कोई नई पद्दति नहीं बल्कि भारतीय संस्कृति की पारम्परिक पद्दति है जिसे आधुनिक विज्ञान के समन्वय से पुनः प्रतिपादित किया जा सकता है। वस्तुतः खेती की यह पद्दति फसल चक्र, फसल अवशेष, हरी खाद, कार्बनिक खाद, केंचुआ खाद, गोबर खाद, यंत्रीकरण, जैविक कीटनाशकों तथा खानिजधारी चट्टानों के प्रयोग पर निर्भर करती है। जैविक खेती की उपयोगिता को निम्न प्रकार से समझाया जा सकता हैः

1. भूमि की उर्वरा शक्ति में टिकाऊपन।
2. शुद्ध वातावरण।
3. पानी की कम आवश्यकता।
4. मृदा के सभी उपयोगी विशेषकर सूक्ष्म तत्वों की आपूर्ति करना।
5. पैदावार की गुणवत्ता सुनिश्चित करके उसके उत्पाद का अधिक मूल्य एवं मानव स्वास्थ्य के लिए भी लाभकारी।
6. कम लागत से अधिक उत्पादन।
7. संतुलित जैविक चक्र को बढावा देकर जैव विविधताओं का संरक्षण।
8. हानिकारक रसायनों से मुक्त भोजन।
9. निर्यात बाजार के लिए अनिवार्य तथा अधिक विदेशी मुद्रा की आय।

भारतीय जीवन दर्शन धरती को माता से भी अधिक सम्मान दिया है। उस धरती को सदैव स्वस्थ रखने के प्रयास किये जाते रहे हैं और इन्हीं परम्परओं के कारण हमारे यहाँ विभिन्न प्रकार की फसलें बिना अधिक भूमि के साथ छेड़ छाड़ किये होती रही है। अतः भारतीय जैविक कृषि के सिद्धांतों में भूमि पूजन का प्रथम स्थान रहा है। इन्हीं कारणों से हम धरती माता को सदैव सस्य श्यामला देखना चाहते हैं।

भारतीय संस्कृति में गाय को भी माता का स्थान दिया गया है। पुरे भारत के किसी भी जाति या सम्प्रदाय के लोग गौ को गौमाता ही कहते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि गाय से हमें कृषि के लिए बैल मिलते हैं तथा खेत के लिए उत्तम खाद के साथ–साथ हमें दूध, दही, मक्खन, घी एवं छाछ भी मिलती हैं जो हमें बीमारियों से दूर रखते है। इससे भूमि की उपजाऊ शक्ति एवं स्वास्थ्य बरक़रार रहता हैं। और इस प्रकार हमारी कृषि बिना उत्पादकता और गुणवत्ता में कमी के हजारों वर्षों से अनवरत रही हैं।

भारतीय दर्शन में कृषि कार्य हेतु वृक्षों का बड़ा महत्त्व है। अतः हमने वृक्षों की सदैव पूजा की है। वृक्ष हमारे भू–मंडल के पर्यावरण को संतुलित रखने में मदद करते हैं। भारतवर्ष में नीम, पीपल, आंवला एवं आम के वृक्षों में देवताओं का वास मानकर उनकी सदा हमने पूजा की है जिसका मुख्य उद्देश्य उनका संरक्षण करना था।

भारतीय कृषि में जल को कृषि का प्राण माना गया हैं। यह सत्य एवं सर्वविदित है कि जल के बिना कृषि संभव ही नहीं हैं। जल की शुद्धता अर्थात जल के सभी स्त्रोतों

को प्रदूषण मुक्त रखना, जल का संरक्षण करना व जल का समुचित सदुपयोग करने के महत्व को हमारे शास्त्रों में बड़ी सूक्ष्मता से समझाया गया हैं। यही कारण है कि हमारी संस्कृति में जल के सभी संसाधनों जैसे नदी, तालाब, कुआँ, बावड़ी एवं बादलों को पूजा गया हैं।

इन सभी सिद्धांतों एवं परम्पराओं को पुनर्जिवित करके हम जैविक एवं प्राकृतिक खेती के रूप में देश को एक नई दिशा दे सकते हैं।

प्राकृतिक खेती के मुख्य घटकः

प्राकृतिक खेती देसी गाय के गोबर एवं गौमूत्र पर आधारित है। इनका खेत में उपयोग करने से मिट्टी में पोषक तत्वों की वृद्धि के साथसाथ जैविक गतिविधियों का विस्तार होता है। प्राकृतिक खेती के मुख्य घटक निम्नलिखित हैं।

1. आच्छादन

- **मृदाच्छादनः** हम जब दो बैलों से खींचने वाले हल से जुताई करने व सुहागा लगने से भूमि पर मिट्टी का आच्छादन हो जाता हैं। जिस से भूमि की अंतर्गत नमी और उष्णता वातावरण में उड़कर नहीं जाती, बची रहती है।
- **काष्टाच्छादनः** जब फसलों की कटाई के बाद दाने छोड़कर फसलों के जो अवशेष भूमि पर आच्छादन स्वरूप डालते हैं, तो जीवजंतु और केंचुऐ भूमि के अंदर बाहर लगातार चक्कर लगाकर चौबीस घंटे भूमि को उपजाऊ एवं समृद्ध बनाने का काम करते हैं और फसलों को बढ़ाते हैं।
- **सजीव आच्छादनः** कपास, अरंडी, अरहर, मिर्ची, गन्ना, अंगूर, अमरुद, अनार, केला, चीकू, आम, आदि फसलों में जो सहजीवी अंतः फसलें या मिश्रित फसलें लेते हैं, उन्हें ही सजीव आच्छादान कहते हैं।

2. वाफसाः वाफसा माने भूमि में हर दो मिट्टी के कणों के बीच जो खाली जगह होती है, उन में पानी न होकर हवा और वाष्प कणों का सम मात्रा में मिश्रण निर्माण होना। वास्तव में भूमि में पानी नहीं, वाफसा चाहिए। याने हवा 50% और वाष्प 50% इन दोनों का समिश्रण चाहिए। क्योंकि कोई भी पौधा या पेड़ अपने जड़ों द्वारा भूमि से जल नहीं लेता, बल्कि,वाष्प के कण और हवा के कण लेता है। भूमि में केवल इतना जल देना है, जिससे निरंतर भूमि की उष्णता से उस जल की वाष्प निर्मिती हो और यह तभी होता है, जब पोधों या फलदार पेड़ों को उनके दोपहर की छांव के बाहर पानी देते हैं। कोई भी पेड़ या पौधे की खाद्य पानी लेने वाली जड़ें छांव के बाहरी सरहद पर होती है। तो पानी और खाद पेड़ की दोपहर को बारह बजे जो छांव पड़ती है, उस छांव के आखिरी सीमा के बाहर 1–1.5 फिट पर नाली निकालकर उसमें देना चाहिए।

3. अन्तःफसलः अन्तः फसल का अर्थ बीच–बीच खाली जगह में कोई दूसरी फसल लेना। उदहारणतः गन्ने का अंकुरण एवं वृद्धि धीरे होने के कारण इसके बीच में दूसरी फसल जैसे मूँग, उड़द, लोबिया, प्याज, लहसुन इत्यादि ली जा सकती है क्योकि गन्ने की रोपाई कतारों के बीच में खाली स्थान छोड़कर की जाती है। दलहनी या रेशे वाली फसलों को अन्तः फसल के रूप में प्रयोग करना मिट्टी संरक्षक के रूप में भी कार्य करता है। ये फसलें नाइट्रोजन निर्धारण प्रदान करती हैं और मिट्टी में अन्य मूल्यवान पोषक तत्वों, जो एकल फसल पर्यावरण के कारण कमी को ठीक करती हैं।

4. गौ–आधारित उत्पादः प्राकृतिक खेती देसी गाय के गोबर एवं गौमूत्र पर आधारित है। देसी प्रजाति के गौवंश के गोबर एवं मूत्र से जीवामृत, घनजीवामृत तथा बीजामृत बनाया जाता है। इनका खेत में उपयोग करने से मिट्टी में पोषक तत्वों की वृद्धि के साथ–साथ जैविक गतिविधियों का विस्तार होता है। जीवामृत का महीने में एक अथवा दो बार खेत में छिड़काव किया जा सकता है।

जीवामृतः

सामग्रीः 10 किलोग्राम देशी गाय का गोबर, 5 से 10 लीटर गोमूत्र, 2 किलोग्राम गुड या फलों के गुदों की चटनी, 2 किलोग्राम बेसन (चना, उड़द, मूंग), 200 लीटर पानी और 50 ग्राम मिट्टी (एक एकड़ के लिए)

बनाने की विधिः प्लास्टिक की टंकी में 200 ली. पानी डाले तथा उसमें 10 किलोग्राम गाय का गोबर, 5 से 10 लीटर गोमूत्र एवं 2 किलोग्राम गुड़ या फलों के गुदों की चटनी मिलाएं। इसके बाद 2 किलोग्राम बेसन, 50 ग्राम मेड़ की मिट्टी या जंगल की मिट्टी डालें और सभी को डंडे से मिलाकर जालीदार कपड़े से बंद कर दे। 12 घंटें के अंतराल पर इसे डंडे से चलाएं और यह 48 घंटे बाद तैयार हो जाएगा। इस जीवामृत का प्रयोग केवल सात दिनों तक ही किया जा सकता है।

घनजीवामृतः

सामग्रीः 100 किलोग्राम गाय का गोबर, 1 किलोग्राम गुड़/फलों का गुदा की चटनी. 2 किलोग्राम बेसन (चना, उड़द, अरहर, मूंग), 50 ग्राम मेड़ या जंगल की मिट्टी, 1 लीटर गौमूत्र

बनाने की विधिः 100 कि. ग्रा. गाय के गोबर को किसी पक्के फर्श व पोलीथीन पर फैलाएं, इसके बाद 1 किलोग्राम गुड़ या फलों गुदों की चटनी और 1 किलोग्राम बेसन को इसके ऊपर फल दे। इसके बाद 50 ग्राम मेड़ या जंगल की मिट्टी डालकर 1 लीटर गौमूत्र इसके ऊपर छिडकें और सभी सामग्री को फॉवड़ा से मिलाएं। इसको 48 घंटे किसी छायादार स्थान पर डालकर जूट के बोरे से ढक दें। 48 घंटे बाद उसको सुखाकर चूर्ण बनाकर भंडारण करें। इस घन जीवामृत का प्रयोग छः माह तक कर सकते हैं।

बीजामृत (बीज शोधन):

सामग्रीः 5 किग्रा. गाय का गोबर, 5 लीटर गाय का गौमूत्र, 20 लीटर पानी, 50 ग्राम चूना, 50 ग्राम मेड़ की मिट्टी (100 कि.ग्रा. बीज के लिए) बनाने की विधि – सभी सामग्री को चौबीस घंटे एक साथ पानी में डालकर रखें। दिन में दो बार लकड़ी से घोलें। बाद में बीज पर बनाए हुए बीजामृत का छिड़काव करके उसे अच्छी तरह मिलाकर छाया में सुखाने के बाद बोएं। बीज शोधन से बीज जल्दी और ज्यादा मात्रा में उगकर आते हैं। इससे जड़ें गति से बढ़ती हैं और भूमि से पोधों पर बीमारियों का प्रादुर्भाव नहीं होगा ।अवधि प्रयोग– बुवाई के 24 घंटे पहले बीजशोधन करें।

5. वनस्पतिक जीवनाशकः जैविक कीट नियंत्रण, प्राकृतिक परजीवियों तथा परभक्षियों के नियंत्रण एवं प्रबंधन द्वारा प्राप्त किया जाता है। इस उपचार का कोई भी दुष्प्रभाव नहीं है और यह मानवों के लिए पूर्णतया सुरक्षित माना जाता है। जैविक कीट नियंत्रण, या अन्य किसी भी प्राकृतिक कीट नियंत्रण का उद्देश्य, पर्यावरण के मौजूदा स्वरूप के पारिस्थितिक संतुलन को कम से कम हानि पहुंचाते हुए कीटों को समाप्त करना होता है। कृषि में बायोपेस्टिकाइड्स का उपयोग ज्यादातर सब्जी और फूल उद्यान व्यवसायों द्वारा किया जाता है। जैविक कीटनाशक पोधों की बेहतर गुणवत्ता सुनिश्चित करते हैं क्योंकि उनके अंदर कोई रासायनिक घटक नहीं होता है

जैविक खेती के मुख्य घटकः

जैविक खेती एक एसी पद्दति है जिसमें रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों एवं खरपतवारनाशियों के स्थान पर जीवांश खाद, जैविक खाद, कीट जैवनाशियों व् बायो खरपतवारनाशियों आदि का उपयोग किया जाता है। जैविक खेती के मुख्य घटक इस प्रकार हैं।

1. **जैविक खाद (गोबर की खाद):** यह जैविक खेती का मुख्य घटक है। क्योंकि यह किसान को सबसे आसानी से प्राप्त हो जाता है जो फार्म पर रहने पशुओं के मल–मूत्र और उसके खाने के बचे हुए व्यर्थ चारे से बनता है।
2. **हरी खादः** यह दो फसलों के बीच में जल्दी बदने वाली दलहनी/रेशों वाली फसलों को हरी अवस्था में भूमि में मिला देना हरी खाद कहलाती है। यह फसल को आवश्यक तत्व विशेष रूप से सुक्ष्म तत्व प्रदान करने के साथ–साथ भूमि की भौतिक दशा में भी सुधार करती है।
3. **वर्मीकम्पोस्टः** वर्मीकम्पोस्ट एक ऐसी खाद है, जी एक विशेष प्रजाति के केंचुओं द्वारा बनाई जाती हैं। यह केंचुओं द्वारा गोबर एवं कचरे को खा कर, मल द्वारा जो पदार्थ बनता है उसे ही वर्मीकम्पोस्ट कहते हैं। वर्मी कम्पोस्ट को मिट्टी में मिलाने से मिट्टी की उर्वरा शक्ति तो बढ़ती ही है, साथ ही साथ फसलों की पैदावार व गुणवत्ता में भी बढ़ोत्तरी होती है। रासायनिक

उर्वरकों के अत्यधिक इस्तेमाल से मृदा पर होने वाले दुष्प्रभावों को भी वर्मी कम्पोस्ट के उपयोग से सुधारा जा सकता है। इस प्रकार वर्मी कम्पोस्ट भूमि की भौतिक, रासायनिक व जैविक दशा में सुधार कर मिट्टी की उपजाऊ शक्ति को टिकाऊ करने में भी महत्वपूर्ण योगदान देता है। अनुमानतः 1 कि.ग्रा. भार में 1000 से 1500 केंचुए होते हैं। प्रायः 1 केंचुआ 2 से 3 कोकून प्रति सप्ताह पैदा करता है। तत्पश्चात हर कोकून से 3–4 सप्ताह में 1 से 3 केंचुए निकलते हैं। नवजात केंचुआ लगभग 6–8 सप्ताह पर प्रजननशील अवस्था में आ जाता है। प्रतिदिन एक केंचुआ लगभग अपने भार के बराबर अवशेष खाकर कम्पोस्ट में परिवर्तित कर देता है। वर्मी कम्पोस्ट 60 से 70 दिनों में तैयार होता हैं।

4. **जीवाणु खादः** जैव उर्वरक विशिष्ट प्रकार के जीवाणुओं का समूह है जो तरल या ठोस रूप में पोधों को दिया जाता है। जैव उर्वरक के प्रयोग से रासायनिक उर्वरकों की एक तिहाई मात्रा तक की बचत हो जाती हैं। नाइट्रोजन आपूर्ति करने वाले ये जैव उर्वरक प्राकृतिक रूप से सभी दलहनी फसलों एवं सोयाबीन, मूंगफली आदि की जड़ों में छोटी–छोटी गांठों में पाए जाते है, जो सहजीवन के रूप में कार्य करते हुए वायुमंडल में मौजूद नत्रजन को पोधों तक पहुंचाते हैं। कुछ जीवाणु मिट्टी मौजूद अनुपलब्ध तत्वों को पोधों के लिए उपलब्ध अवस्था में बदल देने में सहायक होते है। राइजोबियम व अजोटोबक्टर जीवाणुओं का प्रयोग नत्रजन प्रदान करने हेतु किया जाता है। दलहनी फसलों में राइजोबियम व अन्य फसलों में अजोटोबैक्टर का प्रयोग होता है फोस्फोरस की उपलब्धता बढाने हेतु फॉस्फोरस घोलक जीवाणु का प्रयोग किया जाता हैं।

भारत में जैविक कृषि की उपयोगिता

चंदू सिंह, अशोक जायसवाल, संजीव शर्मा, गणपति मुक्रि, यलमल्ले वी आर एवं सुभाष बाबू
बीज उत्पादन इकाई,
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली 110 012

जैविक कृषि एक ऐसी कृषि पद्धति है जिसमें रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों तथा खरपतवार नाशियों के स्थान पर जैविक खाद, कीटनाशकों तथा जैविक खरपतवार नाशियों का उपयोग किया जाता है अर्थात कृषि में कीटनाशकों तथा रासायनिक उर्वरकों के अनुप्रयोग को दरकिनार करते हुए पर्यावरणीय रुप से प्रभावी तथा 'हरित कृषि' को महत्व देने की प्रक्रिया को जैविक कृषि कहते हैं। हरित क्रान्ति से पूर्व भारत में इसी प्रकार की कृषि की जाती थी परन्तु खद्यान्न की कमी की समस्या से निपटने के लिए रासायनिक उर्वरकों तथा कीटनाशकों पर आधारित कृषि ने इसे विस्थापित कर दिया। जैविक कृषि में उर्वरकों के रुप में जीवांश खाद (गोबर), हरी खाद, जीवाणु कल्चर व कम्पोस्ट खाद का उपयोग किया जाता है जबकि कीटनाशकों के रुप में नीम, भांग, गौमूत्र आदि से निर्मित जैवकीटनाशी व परभक्षी कीटों पर आधारित कीटनाशकों का उपयोग किया जाता है। खरपतवारनाशकों को भी जैविक विधियों से ही निर्मित किया जाता है। भारतमें जैविक कृषि का प्रारम्भ सबसे पहले मध्य–प्रदेश राज्य में 2001–2002 में हुआ था, वर्तमान समय में अपने लगभग 27 प्रतिशत भाग (0.76 मिलियन हेक्टेयर) पर जैविक कृषि कर यह शीर्ष पर बना हुआ है। परंतु लगभग 75000 हेक्टेयर भूमि पर जैविक कृषि कर सिक्किम भारत का पहला पूर्ण जैविक राज्य बन गया है। वर्तमान समय में भारत में जैविक खेती का दायरा 33.32 लाख हेक्टेयर है। सिक्किम राज्य भारत वर्ष का प्रथम पूर्ण जैविक राज्य बन गया है जो एक उदाहरण के साथ ही अन्य राज्यों के लिए प्रेरणा स्रोत का भी कार्य किया है और जैविक कृषि को गम्भीरता से अपनाने की दृष्टि से विश्व का ध्यान भी अपनी ओर खींचा है। सिक्किम की यह उपलब्धि भारत को विश्व समुदाय के समक्ष पर्यावरण अनुकूल गतिविधियों के प्रबल पैरोकार के रुप में भी स्थापित करती है।

रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक, व खरपतवार आधारित कृषि के जो दुष्प्रभाव पर्यावरण एवं मानव स्वास्थ्य पर पड़ रहे हैं उनसे निपटने के लिए जैविक कृषि एक सर्वोत्तम विकल्प है, जोकि स्वयं में पर्यावरण के अनुकूल भी है और यही कारण है कि सम्पूर्ण विश्व का ध्यान जैविक कृषि की ओर आकृष्ट हुआ है। भारत में भी रासायनिक कृषि के दुष्प्रभावों के कारण इस ओर तेजी से प्रयास किए जा रहे हैं कि जैविक कृषि भविष्य में कृषि के एक स्थायी माध्यम के रुप में स्थापित हो सके। 1960 के दशक में प्रारम्भ हुई हरित क्रान्ति ने निश्चित रुप से भारत को खाद्यान्न के उत्पादन में आत्मनिर्भर बनाया, लेकिन वहीं इसका दूसरा पहलू भयानक तस्वीर भी प्रस्तुत करता है। रासायनिक उर्वरकों के अन्धाधुन्ध उपयोग से जहाँ मृदा की उर्वरता खतरनाक तरीके से प्रभावित हुई वहीं भूजल के अनियन्त्रि दोहन से उत्तर भारत के हरित क्रान्ति आच्छादित क्षेत्रों में मरुस्थलीकरण का खतरा उत्पन्न हो गया है। ऐसे में यदि अभी रासायनिक कृषि के विकल्प के रुप में जैविक कृषि को नहीं प्रोत्साहित किया गया तो इसके परिणाम भयावह होंगे इसमें कोई सन्देह नहीं है।

भविष्य की अनिवार्यता

भारत में कृषि की निरन्तर घट रही जोत तथा निरन्तर कम हो रही कार्यकुशलता और कृषि की बढ़ती लागत तथा साथ ही अन्धाधुन्ध रासायनिक उर्वरकों व कीटनाशकों का प्रयोग, इन सबको रोकने के लिए जैविक कृषि एक विकल्प के रुप में है। जब दूसरी हरित क्रान्ति की बात हो रही है तो हमें कृषि भूमि की गिरती उत्पादकता का भी समाधान तलाशना होगा और कृषि उत्पादन बढ़ाने के तरीकों के अलावा जल प्रबन्धन, मृदा की उर्वरता को बनाए रखने के रास्ते भी तलाशनें होंगे और इस सबका सर्वोत्तम विकल्प जैविक कृषि है जिसमें सभी मुद्दों का समाधान निहित है।

जैविक कृषि न केवल पर्यावरणीय कारकों से बल्कि स्वास्थ्य कारणों से भी भविष्य की अनिवार्यता बन सकती है, क्योंकि रासायनिक उर्वरकों व कीटनाशकों के उपयोग के कारण भी मानव स्वास्थ्य पर गम्भीर दुष्प्रभाव होने लगे हैं। यह तथ्य वर्षों पूर्व ही प्रमाणित हो चुका है कि रासायनिक कृषि से उत्पन्न खाद्यान्नों से न केवल उपभोक्ता बल्कि उत्पादकों पर भी घातक प्रभाव पड़ रहे हैं। भारत में केरल के कसारगोड़ में रासायनिक कीटनाशक 'एण्डोसल्फान' के प्रयोग से 400 से अधिक लोग मर चुके हैं जबकि 4000 से अधिक लोग विकलांग हो चुके हैं। इस प्रकार से भारत के अनेक क्षेत्र में लोग कीटनाशकों के दुष्प्रभाव से पीड़ित हैं। अतः स्वास्थ्य के लिए अनुकूल भोजन प्राप्ति का स्वच्छ एवं विषाक्त पदार्थ मुक्त स्रोत जैविक कृषि ही हो सकती है। जैविक कृषि, स्वस्थ्य उत्पादन एवं उपभोक्ता का प्रभावी विकल्प है।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहन

जैविक कृषि पर्यावरणीय एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी लाभों की दृष्टि से ही उपयोगी नहीं है बल्कि यह ग्रामीण अर्थव्यवस्था का एक प्रभावी प्रोत्साहक भी है। हमारे देश में जोतों का आकार काफी छोटा है तथा छोटे व मध्यम कृषकों की ही संख्या अधिक है जबकि वर्तमान में जो कृषि माडल है वह ऋण पर आधारित है जिससे कृषक का मात्र जीवन निर्वाह ही हो सकता है, ऐसे में कृषक हमेशा निर्धन बना रहता है। वही दूसरी तरफ जैविक कृषि में कृषक को ऋण लेने की आवश्यकता नहीं रहती, क्योंकि उर्वरक से लेकर कीटनाशक तक सब आसानी से न्यूनतम लागत पर उपलब्ध हो जाता है, इसके अतिरिक्त जैविक कृषि से उत्पादित फसलें शीघ्र नष्ट नहीं होती तथा उनकी भारी माँग भी बाजार में है। जैविक कृषि प्रणाली एक ओर जहाँ किसानों को ऋण मुक्त करती है तो दूसरी ओर कृषकों को अतिरिक्त आय के अवसर भी प्रदान करती है। अतिरिक्त आय के अवसर पैदा होने से रोजगार के और अधिक अवसर सृजित होंगे जिसके फलस्वरुप पलायन की समस्या तथा अनेक सामाजिक समस्याओं को प्रभावी रुप से रोका जा सकेगा।

जेविक खेती के लाभ

जैविक कृषि से कृषि के साथ मित्र फसलों का भी उत्पादन किया जाता है, जैसे कि हरी खाद के लिए दलहनी फसलों का उत्पादन करना जिससे भूमि में नाइट्रोजन की मात्रा तो बढ़ती ही है साथ ही इससे मृदा क्षरण की समस्या से भी निजात मिलती है। जेविक खेती अपनाने से भूमि की उपजाऊ क्षमता बढती है रासायनिक उर्वरक भूमि की नमी को जल्दी सोख लेते हैं जबकि जैविक खाद भूमि की सतह की नमी बनाए रखती है जिससे फसलो के लिए सिंचाई की आवश्यकता कम होगी। रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से मृदा का लवणीकरण बढ़ जाता है जिससे भूमि धीरे–धीरे बंजरता की ओर बढ़ने लगती है। जैविक कृषि इस समस्या से भी निजात दिलाती है। इस तरह मृदा स्वास्थ्य को उत्तम बनाए रखा जा सकता है। साथ ही साथ जेविक खाद के उपयोग से फसल की लागत में भी कमी होगी जिसका सीधा प्रभाव किसानों की आय पर भी पड़ेगा। कृषि सुधार का अन्तिम लक्ष्य उत्पादकता में वृद्धि करना होता है। जैविक कृषि से कृषि उत्पादन में 15 प्रतिशत से 20 प्रतिशत की वृद्धि तथा लागत में 80 प्रतिशत तक कमी होती है जो निश्चित रुप से लाभदायक है। जैविक कृषि में जैविक खादों, कीटनाशकों के उपयोग से जहाँ भूमि एवं मृदा को तथा जलस्रोतों को नुकसान नहीं होता वहीं खाद इत्यादि के लिए पुशओं पर अनन्य रुप से निर्भर होने के कारण कृषि के साथ–साथ पुशपालन को भी बढ़ावा मिलेगा साथ ही भविष्य की पीढ़ीयों के लिए भूमि संसाधन का संरक्षण भी हो सकेगा। पुशओं का गोबर और कचरे का प्रयोग जैविक खाद बनाने में करने से पर्यावरण को लाभ होगा तथा बीमारियों के प्रसार में भी रोक लगेगी। राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय बाजार में जैविक उत्पादों की मांग बहुत अधिक है जिसके कारण जैविक उत्पाद बाजार में महंगे बिकते हैं अतः किसानों की आय में वृद्धि होगी।

जैविक कृषि की चुनौतियाँ

जैविक कृषि में सहायक तकनीकों जैसे– कम्पोस्ट खाद निर्माण, जैविक खाद का निर्माण, जैविक कीटनाशकों का निर्माण करने की तकनीक का अभाव होता है तथा आवश्यक जैविक उत्पादों को पारम्परिक उत्पादों की तुलना में सभी जगह अधिक मूल्य नहीं मिल पा रहा है। प्रभावी विपणन प्रणाली का भी अभाव है। जैविक उत्पादों के प्रमाण ीकरण की उचित व्यवस्था का अभाव है, जिसमें प्रायः जैविक उत्पाद भी अन्य उत्पादों के भाव में ही विक्रय करने होते हैं। जिस अनुपात में विदेशों से जैविक उत्पादों की

माँग हो रही है उसकी आपूर्ति न हो पाने से नकारात्मक सन्देश जा रहा है, जिससे जैविक उत्पादों का बाजार क्षीण हो रहा है। किसानों में जैविक कृषि को लेकर अभी जागरुकता की कमी है। अभी वे इसे कम लाभदायक कृषि प्रणाली के रुप में ही देखते हैं। अतः जैविक कृषि को किसानों के बीच प्रचार प्रसार करके इसके प्रति जागरुक करने की आवश्यकता है।

जैविक कृषि हेतु भारत सरकार की पहल

केन्द्र सरकार जैविक कृषि को विभिन्न योजनाओं के माध्यम से प्रोत्साहित कर रही है। इन योजनाओं में जैविक कृषि पर राष्ट्रीय परियोजना(एन.पी.ओ.एफ.), राष्ट्रीय बागवनी मिशन (एच.एम.एन.ई.एच.), राष्ट्रीय मृदा स्वास्थ्य एवं उर्वरता प्रबन्धन योजना (एन.पी.एम.एस.एच.एफ.) तथा राष्ट्रीय कृषि विकास योजना (आर.के.वी.वाई.) प्रमुख है। इसके अलावा सतत् कृषि पर राष्ट्रीय मिशन (एन.एम. एस.ए.) भी वर्ष 2010 से संचालित किया जा रहा है। इसके अलावा सरकार जैविक कृषि को प्रोत्साहित करने तथा उर्वरकों के नियन्त्रित उपयोग के लिए निम्न उपाय कर रही है–

- मृदा स्वास्थ्य कार्ड द्वारा मृदा की जाँच की जा रही है, जो अन्ततः जैव उर्वरकों के उपयोग को प्रोत्साहित करती है।
- कृषि हेतु पोषक तत्वों को जैविक स्रोतों से उपलब्ध कराने की परियोजना वर्ष 2008–09 से ही जारी है।
- किसान चैनल, जो कि 24 घण्टे का कृषि को समर्पित चैनल है। इसमें जैव कृषि को प्रोत्साहन करने वाले कार्यक्रम प्रसारित किए जा रहे हैं।

इस प्रकार से भविष्य की अनिवार्य जरुरत के रुप में जैविक कृषि उभर रही है। इस क्षेत्र में जो चुनौतियाँ हैं वे आसानी से निदान योग्य है, बस दृढ़ इच्छाशक्ति की आवश्यकता है।

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जिसकी लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या जीविकोपार्जन के लिए खेती पर निर्भर रहती है, जिसके कारण अधिकतर ग्रामीण जन निर्धनता के शिकार है। जैविक खेती करने से फसल के उत्त्पादन में वृद्वि होगी जिसके परिणाम स्वरूप किसानों की आय भी बढ़ेगी भारत जैसे कृषि प्रधान देश में यह बहुत आवश्यक है की किसान खेती के जैविक तरीकों को अपनाकर आत्मनिर्भर बनें जिससे किसानों का भौतिक स्तर भी सुधरेगा और जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव देश की उन्नति में देखा जा सकेगा।

प्राकृतिक खेती की आवश्यकता क्यों ?

नरेन्द्र मोहन सिंह, राजु आर., नित्यश्री एम.एल., और अलका सिंह
कृषि अर्थशात्र संभाग
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली 110 012

सिंथेटिक यानि रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशक दवाओं के खेती में अत्यधिक उपयोग के कारण मिट्टी की उर्वरा शक्ति खत्म होती जा रही है और खेत व खलिहान बंजर हो रहे हैं जिसके कारण उत्पादन घट रहा है लागत ज्यादा व आय कम होती जा रही है।

कृषि में सिंथेटिक केमिकल उर्वरकों व महंगे कीटनाशक दवाओं से उत्पादन लागत ज्यादा होने के कारण हाल ही के वर्षों में किसानों के कर्जों में काफी बढोतरी देखने को मिल रही है

किसानों के कर्जों में अत्यधिक वृद्धि होने के कारण , अब तक हजारों किसानों को कई राज्यों में आत्महत्या का कारण समझा जा रहा है भारत सरकार, कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय व नीति आयोग प्राकृतिक खेती पद्धति को को एक विकल्प के रूप में देख कर रही है। प्राकृतिक रूप से खेती के तरीके को प्राचीन काल से ही बेहतर माना जाता रहा है। प्राकृतिक खेती को रसायन मुक्त पशुधन आधारित कृषि के रूप में भी परिभाषित किया जा सकता है। प्राकृतिक खेती सहित पारम्परिक स्वदेशी पद्धतियों को प्रोत्साहित करने के लिए भारत सरकार द्वारा भारतीय प्राकृतिक कृषि पद्धति योजना (बी.पी.के.पी.) 2020–21 की शुरूआत की गई। प्राकृतिक खेती भारतीय प्राचीन कृषि पद्धतियों पर आधारित है। उत्पादन की न्यूनतम लागत के कारण यह प़द्धति जीरो बजट नेचुरल फार्मिंग (जे. बी.एन.फ) के नाम से भी जानी जाती है। इसमें किसान के घर में उपलब्ध संसाधनों का उपयोग खेती करने में किया जाता है। इसमें किसान के पास एक देशी गौवंश का होना जरूरी है। एक देशी गाय से किसान 30 एकड़ तक प्राकृतिक खेती करने में सक्षम होता है। इस पद्धति में खेतों की जुताई, मिट्टी को पलटना व निराई गुड़ाई नहीं की जाती व इसके स्थान पर मृदा की उर्वरा शक्ति और अच्छे पोषण में योगदान देनेवाले लाभकारी मिट्टी के जीवों, केंचुओं व जीवाणुओं को पुनर्जीवित करने पर ध्यान केंद्रित किया जाता है। इसमें वर्षा के जल को प्राकृतिक रूप से संचित करने पर महत्व दिया जाता है। प्राकृतिक खेती हमें सिंथेटिक केमिकल उर्वरकों व कीटनाशकों के प्रयोग से बचाती है व केमिकल उर्वरकों के स्थान पर गोबर की खाद, फसल अवशेषों से खाद, जीवाणु खाद का प्रयोग किया जाता है। व रासायनिक कीटनाशकों के विकल्प में जैविक कीटनाशकों जेसे अग्निअस्त्र , ब्रह्माअस्त्र और नीमअस्त्र का प्रयोग किया जाता है। इस पद्धति में स्वस्थ पोधों से स्वयं बीज तैयार करने पर महत्व दिया जाता है। प्राकृतिक खेती जैव विविधता के अधिकतम कार्यात्मक प्रयोग द्वारा फसलों, पेड़ों और पशुधन को एकीकृत करती है।

यह पद्धति मिट्टी की उर्वरा शक्ति और पर्यावरणीय स्वास्थ्य को बढ़ाने तथा ग्रीन हाउस उत्सर्जन को कम करने या निम्न करने जैसे कई अन्य लाभ प्रदान करते हुए किसानों की शुद्ध आय बढ़ाने में सहायक है प्राकृतिक खेती सहित पारम्परिक स्वदेशी पद्धतियों को प्रोत्साहित करने के लिए भारत सरकार द्वारा भारतीय प्राकृतिक कृषि पद्धति योजना (बी.पी.के.पी.) 2020–21 की शुरूआत की गई । इसके अंतर्गत, कलस्टर निर्माण, समता निर्माण और पर्शिक्षित कर्मियों द्वारा प्रमाणीकरण और अवशेष विश्लेषण के लिए प्रति हेक्टेयर 12200.00 रूपयों की वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है। अब तक ,प्राकृतिक खेती के तहत देश भर के 8 राज्यों में 4.09 लाख हेक्टेयर क्षेत्र को कवर किया गया है। जो देश भर के कुल कृषि उत्पादन क्षेत्र का सिर्फ दो प्रतिशत है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा बिठाई गयी कमेटी ने कई रिसर्च पेपर्स के अध्यन के पश्चात् इस पद्धति से सम्बंधित अपनी रिपोर्ट में यह सलाह दी गयी है कि प्राकृतिक खेती को इंटर–क्रापिंग विधि, केंचुआ खाद व नियमित जैविक खादों के प्रयोगों के साथ कम सिंचित क्षेत्रों में अधिक प्रभावशाली बनाया जा सकता है व साथ साथ ये भी आगाह किया है कि

जेविक खादों का प्रयोग कम या बिल्कुल न करने से दो या तीन वर्षों के पश्चात उत्पादन घट सकता है। इसके लिए आगे अध्यन करने के लिए कम सिंचित (रेनफेड) क्षेत्रों में रिसर्च ट्रायल प्रोजेक्ट लगाने का निर्णय लिया गया है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद –भा.कृ.अ.सं. द्वारा इस पद्धति को प्रोत्साहन प्रदान करने व इसके प्रसार के लिए प्राकृतिक खेती के विषय को सभी कृषि विश्वविद्यालय के स्नातक और स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम में शामिल करने का निर्णय लिया गया है व इसके साथ अलग से एक वर्षीय सर्टिफिकेट कोर्स व दो वर्षीय डिप्लोमा कोर्स का प्रारूप तैयार करने का भी फैसला लिया गया है ताकि ज्यादा संख्या में युवाओं व किसान भाईयों को प्रशिक्षित किया जा सके। किसान भाई आगे भविष्य में प्राकृतिक खेती से सम्बन्धित जानकारी के लिए भा.कृ.अ.प.–भा.कृ.अ.सं., नई दिल्ली के साथ जुड़कर मार्गदर्शन प्राप्त कर सकते हैं।

प्राकृतिक खेती की उपयोगिता :

कम सिंचित क्षेत्रों में अधिक उपयोगीः

इसमें गोबर की खाद, फसल अवशेषों से खाद, जीवाणु खाद का उपयोग व आच्छादन की विधि द्वारा जल की खपत कम होने के कारण ,कम सिंचित क्षेत्रों में अधिक उपयोगी पाई गई है। इस विधि में सिंचाई व बिजली की आवश्यकता न्यूनतम हो जाती है।जिससे उत्पादन लागत में भारी कमी हो जाती है व किसान की शुद्ध आय में वृद्धि हो जाती है

उत्पादन की न्यूनतम लागत :

प्राकृतिक खेती में रासायनिक खादों, रासायनिक कीटनाशकों, जुताई व निराई–गुड़ाई की लागत, बीज खरीदने का खर्च काफी कम हो जाता है ।बीज किसान अपनी फसल के स्वस्थ पौधों से स्वम तेयार करता है , सिंचाई की मात्रा में कमी होने से बिजली की आवश्यकता भी कम हो जाती है जिस कारण उत्पादन लागत भी कम हो जाती है। इस प्रकार प्राकृतिक स्रोत, पशुधन और घरेलू संसाधनों का उपयोग कर कुल उत्पादन लागत न्यूनतम हो जाती है।

मृदा उर्वरा शक्ति को पुनर्जीवित करनाः

प्राकृतिक खेती में बंजर भूमि को भी एक या दो वर्षा में कृषि योग्य बनाने की क्षमता है। जीवामृत व आच्छादन विधियों का उपयोग, प्राकृतिक रूप से मृदा के कार्बन में वृद्धि कर मृदा को आश्चर्यजनक रूप से उपजाऊ बना देता है।

फसल उत्पाद का भाव अधिक व लागत कमः

प्राकृतिक खेती से प्राप्त फसल उत्पाद केमिकल फ्री होने के कारण अधिक स्वास्थ्यवर्धक, स्वादिष्ट व उच्च कोटि के होते हैं जिसका बाजार भाव 25% से 30% अधिक प्राप्त होता है व इसमें उत्पादन की लागत न्यूनतम होती है।

रोजगार सृजन व ग्रामीण विकास की संभावनाएं

यह पद्धति नये उद्दमों, मूल्य वर्धन, स्थानीय क्षेत्रों में विपणन आदि में रोजगार के सृजन में सहायक है। इससे ग्रामीण युवाओं का पलायन रूकेगा।

पर्यावरणीय स्वास्थ्यवर्धक पद्धति

पर्यावरणीय स्वास्थ्य को बढ़ाने ने तथा ग्रीन हाउस उत्सर्जन को कम करने या निम्न करने जैसे तथा कई अन्य लाभ प्रदान करते हुए किसानों की शुद्ध आय में वृद्धि करने वाली पद्धति है। मनुष्य स्वास्थ्य के लिए एक हितकर कृषि पद्धति है

पशुधन स्थिरताः

कृषि प्रणाली में पशुधन का एकीकरण प्राकृतिक खेती में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और परिस्थितिकी तंत्र के पुनर्चक्रण में मदद करता है। प्राकृतिक खेती का मूल स्तम्भ पशुधन ही है। जीवामृत और बीजामृत जैसे इको–फ्रेंडली बायो इनपुट गाय के गोबर व गोमूत्र से ही तैयार किये जाते हैं।

स्वस्थ फसल व लचीलापनः

प्राकृतिक खेती पद्धति में मृदा की संरचना अच्छी हो जाने से पौधे स्वस्थ होकर सूखे, चक्रवात व बाढ़ जैसी परिस्थितियों की गंभीरता कम कर देते हैं व मौसम की चरम सीमाओं के खिलाफ फसलों को लचीलापन प्रदान करते हैं,

इस प्रकार प्राकृतिक खेती किसानों को आर्थिक सबलीकरण प्रदान करती है।

प्राकृतिक खेती के मूल स्तम्भ

1. बीजामृत : यह प्रथम चरण होता है जिसमें देशी गायों के गोबर, गोमूत्र, चूने व खेत की मिट्टी से बीज शोधन (सीड ट्रीटमेंट) का कार्य किया जाता है। इसमें गाय का गोबर 5 किलोग्राम, गोमूत्र 5 लीटर, चूना 50 ग्राम, पानी की मात्रा 20 लीटर, एक मुठ्ठी खेत की मिट्टी, इस मिश्रण को 24 घंटे तक रखने पर बीजामृत तैयार हो जाता है।

2. जीवामृत : इस विधि में गाय के गोबर, गोमूत्र व अन्य जैविक पर्दाथो का एक घोल तैयार कर किण्वन (फर्मेंटेशन) किया जाता है। इसे तैयार करने के लिए देशी गाय का गोबर 10 किलो, गोमूत्र 10 लीटर, गुड़ या फलों का गूदा (पल्प) 1 से 2 किलो , और मूंग या अरहर या चने का आटा 1 से 2 किलो, जीव युक्त मिट्टी एक मुठ्ठी, पानी 200 लीटर इस मिश्रण को मिलाकर 2 से 3 दिनों तक किण्वन (फर्मेंटेशन) छाँव में रखकर तैयार किया जाता है।

3. आच्छादन : इसमें जुताई के स्थान पर फसल के अवशेषों को भूमि पर आच्छादित कर दिया जाता है। इसमें सूक्ष्म जीवाणु और केंचुए भूमि में अंदर बाहर चक्कर लगाकर भूमि को बलवान, उर्वरा एवं समृद्ध बनाने का काम करते रहते हैं। आच्छादन से मृदा की नमी और उष्णता वातावरण में न जाकर मृदा में ही बची रहती है, जिस कारण सिंचाई की कम मात्रा की आवश्यकता पड़ती है।

4. वाफसा : इसमें सिंचाई के स्थान पर मृदा में नमी एवं वायु की उपस्थिति को महत्व दिया जाता है। जिस कारण सिंचाई की मात्रा में 90% तक की कमी हो जाती है। इस विधि में भूमि की उपजाऊ शक्ति बढ़ाने के लिए बीजामृत से बीज संस्कार व बीज या पौधे लगाने के बाद जब हम फसलों को सिंचाई के पानी के साथ हर महीने में 1 या 2 बार जीवामृत देते हैं तो मृदा शक्ति में वृद्धि होती है व आच्छादन रूपी विधि द्वारा भूमि के अंदर वाफसा का निर्माण करते हैं। इससे पौधे स्वस्थ होकर वृद्धि को प्राप्त करते हैं।

अन्य मुख्य सिद्धांत

5. अंतर फसल विधि व कीट नियंत्रण

अंतर फसल विधि व साथ साथ मुर्गीपालन व गोपालन को अपनाकर किसान अपनी शुद्ध आय में वृद्धि कर निरंतर आमदनी प्राप्त करता रहता है व यह इंटर–क्रापिंग विधि खरपतवार नियंत्रण कीट व रोग नियंत्रण व मृदा स्वास्थ्य के लिए भी महत्वपूर्ण व उपयोगी सिद्ध हुई है इस पद्धति में रासायनिक कीटनाशकों के विकल्प में जैविक कीटनाशकों जेसे अग्निअस्त्र, ब्रह्माअस्त्र और नीमअस्त्र का प्रयोग किया जाता है। इसे किसान के खेत में ही उपलब्ध संसाधनों से जेसे गाय का गोबर ,गोमूत्र, हरी मिर्च, नीम का गूदा (पल्प) व नीम की पत्तियों का उपयोग कर तैयार किया जाता है। यह जैविक कीटनाशक लीफरोलर, स्टेम बोरर, फ्रूट बोरर, पोड बोरर, सकिंग पेस्ट और मीली बग जेसे सभी तरह के नुकसानदायक कीटों को नियंत्रण करने मे उपयोगी सिद्ध हुआ है।

किसानों प्रति भारत सरकार का लक्ष्य :

कृषि में उत्पादन लागत में भारी कटौती करनाः

इसमें जैविक आदानों को तैयार करने के लिए किसानों के खेत, प्राकृतिक स्रोत, पशुधन और घरेलू संसाधनों का उपयोग कर उत्पादन लागत को कम करना है। व साथ साथ किसानों को सब्सिडी के रूप में आर्थिक सहयोग प्रदान करना, तकनीकी ज्ञान के प्रचार व प्रसार के लिए क व क के द्वारा कृषि मेलो का आयोजन करवाना ताकि

किसानों की शुद्ध आय में वृद्धि करनाः

इसमें इंटर–क्रापिंग की विधि द्वारा शुद्ध आय में वृद्धि करना व उत्पादन लागत में कमी द्वारा खेती को व्यावहारिक और अनुकूल बनाना।

कृषि में भारत के किसानों को आत्मनिर्भर बनाना :

कृषि में भारत के किसानों को आत्मनिर्भर बनाने की ओर दिशा में भारत सरकार कई सब्सिडी व प्रोजेक्ट योजनाए लाकर किसानों को आर्थिक सबलीकरण प्रदान कर भारत देश के किसानों को कृषि के छेत्र में आत्मनिर्भर बनाने की ओर प्रयास कर रही है इसके लिए बिजली की आपूर्ति सस्ती कीमत में व सिचाई के लिय नहरों का निर्माण विकास भी शामिल है

शाकीय फसलों में लगने वाले कीटों का समेकित कीट प्रबंधन

संजीव रंजन सिन्हा और देबजानी डे
कीट विज्ञान विभाग संभाग,
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली 110 012

शाकीय फसलों का भारत की कृषि में विशेष महत्व है जिसका मुख्य कारण यह है कि अधिकांश भारतीय शाकाहारी हैं। ये फसलें पूरे वर्ष लगाई जाती है जिसके कारण नाशीजीव एक ऋतु से दूसरे ऋतु और बुवाई से कटाई तक बने रहते हैं। कीटों का प्रकोप या विद्यमान रहना ही सब्जियों कि गुणवत्ता और विक्रय पर दुष्प्रभाव डालता है जिसका नुकसान कई बार उपज से भी ज्यादा होता है। इन कीटों से लगभग 30–40% तक नुकसान होता है।

शाकीय फसलों का प्रबंधन दूसरी फसलों से कुछ भिन्न है क्योंकि इसका प्रयोग तुड़ाई और कटाई के उपरांत शीघ्र ही किया जाता है। इसी कारण दुष्प्रभावी कीटनाशकों का प्रयोग बहुत कम और आवश्यकता पड़ने पर ही किया जाता है। समेकित कीट प्रबंधन इस दिशा मे एक सशक्त कदम है जिसमें कीट प्रबंधन मूल रूप से बुवाई और रोपाई के समय मे परिवर्तन, प्रतिरोधी किस्में लगा कर, अंतरफसलें लगा कर और फेरोमोन पाशों का प्रयोग किया जाता है । यह लेख शाकीय फसलों मे लगने वाले कीट और उनका प्रबंधन पर लिखा गया है जो जनमानस विशेषकर किसानों के लिए विशेष लाभकारी होगा।

बैंगन

प्ररोह या फल छेदक: इस कीट की सूँडी बैंगन के मुख्य शत्रुओं में से एक है जो प्रारम्भिक अवस्था से फल अवस्था तक सक्रिय रहती है। लगभग एक महीने के बैंगन के पौधे पर इसका प्रकोप प्रारम्भ हो जाता है। इसी अवस्था में सूँडी नई पुष्प कलियों और तने में छेद करके घुस जाती है जिससे ऊपर का भाग लटक जाता है और पौधे की बढ़वार रुक जाती है। फल के अंदर घुसकर यह गूदा खाती एवं फल विकृत हो जाता है जिससे बैंगन का बाज़ार मूल्य कम हो जाता है।

हड्डा भृंग: यह भृंग भूरे रंग में अर्धगोल आकृति का होता है। इसके शरीर के ऊपरी भाग में 6, 12 या 28 काली बिंदियाँ पाई जाती है। इस कीट के वयस्क और ग्रब्स पत्तियों में छेद बनाकर खाते हैं जिससे शिराएँ ही शेष रह जाती है। ग्रसित पौधे सूखकर मर जाते हैं।

फुदका या तेला: यह छोटा हरे रंग का कीट कोमल पत्तियों का रस चूसता है। इसके वयस्क और निम्फ दोनों ही पत्तियों का रस चूसते हैं जिसके प्रभाव से पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं।

प्रबंधन–

- अपने क्षेत्र के लिए अनुमोदित और प्रमाणित बीज ही लगायें।
- एपिलेकना/हड्डा भृंग के अंडों और ग्रब्स को एकत्रित करके नष्ट कर दें।
- फल छेदकों की निगरानी के लिए फेरोमोन ट्रेप 5 प्रति है. की दर से लगाए।
- फल छेदकों द्वारा क्षतिग्रस्त फलों को नष्ट कर दें।
- आवश्यकता पड़ने पर रस चूसने वाले कीटों के लिए थायामेथोक्साम 25 डब्लूजी (3 ग्राम/10लीटर) या फेनप्रोपैनथिन 30 ईसी (3 ग्राम/10लीटर) या डाईफेनथ्यूरोन 50 डब्लूपी (1 मिली/ली) का छिड़काव 15 दिन के अंतराल से करें।
- आवश्यकतानुसार फल छेदकों के नियंत्रण के लिए एज़ाडाईरेक्टिन 1% ईसी नीम आधारित(1.5 मिली/ली) या एज़ाडाईरेक्टिन 0.03% ईसी नीम तेल आधारित(5 मिली/ली) या लेम्डासाईहेलोथ्रिन 5 ईसी (0.5–1.0 मिली/ली)

या क्लोरएनट्रिनीलीप्रोल 18.5 एससी (4 मिली/10ली) या इमामेक्टिन बेन्ज़ोएट 5 एसजी (4मिली/10 ली) का प्रयोग 15 दिन के अंतराल पर करें।

भिण्डी

भिंडी का प्ररोह एवं फल छेदक: यह चित्तीदार सूँडी होती है जो तनों को छेदकर अंदर घुस जाती है जिससे पौधे का शीर्ष भाग सूख जाता है। फल लगने पर उसमें छेद बनाकर अंदर का गूदा खाती है इससे ग्रसित फल मुड़ जाते हैं और भिंडी खाने योग्य नहीं रहती। पूर्ण विकसित सूँडी का सिर काला तथा शरीर पर छोटे छोटे बाल होते हैं। अधिक नमी और उच्च तापमान पर इसका प्रकोप बढ़ जाता है।

भिंडी का फुदका या तेला: इसके निम्फ और वयस्क पौधे की पत्तियों की निचली सतह का रस चूसते हैं जिससे ग्रसित पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं और अधिक प्रकोप होने पर मुरझाकर सूख जाती हैं। बदली के मौसम में इसका प्रकोप और भी बढ़ जाता है। वयस्क कीट 2–3 मि॰मी लम्बे हरे रंग के होते हैं और यह हमेशा कुछ तिरछे चलते हैं।

सफ़ेद मक्खी: ये सफ़ेद रंग की छोटी मक्खी होती है जो फलों का रस चूसती है। यह भिंडी में 'येलो वेन मोजैक वाइरस' फैलाती है जिसके कारण पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं। इस बीमारी से पैदावार में काफी कमी आती है और फल खाने योग्य नहीं रहता।

माइट: यह बहुत ही सूक्ष्म लाल रंग के होते हैं। यह पोधों के तनो और पट्टियों के ऊपर जाला सा बना देते हैं और उन्हें कमजोर कर देते हैं। इनके प्रभाव से पत्तियाँ टेढ़ी पड़ जाती है और उन पर धब्बे पड़ जाते हैं।

प्रबंधन

- अपने क्षेत्र के लिए अनुमोदित और प्रमाणित जातियों के बीज का ही प्रयोग करें।
- अगर संभव हो तो विषाणु प्रतिरोधी किस्में ही प्रयोग करें और रोग ग्रस्त पोधों को खेत से उखाड़ कर नष्ट कर दें।
- मकड़ी एवं परभक्षी कीटों के विकास और गुणन के लिए मुख्य फसल के बीच में और उसके चारों ओर बेबीकॉर्न लगाएँ जो बर्ड पर्च का भी कार्य भी करती है।
- रस चूसने वाले कीटों से बचाव के लिए बीजों को इमीडाक्लोप्रिड या थायामेथोक्साम द्वारा 5 ग्राम/कि.ग्रा. बीज कि दर से उपचारित करें।
- फल छेदकों के निगरानी के लिए 5 फेरोमोन ट्रेप प्रति हेक्टेयर कि दर से लगाएँ।
- फल छेदकों के नियंत्रण के लिए ट्राईकोग्रामा काइलोनिस एक लाख प्रति हेक्टेयर कि दर से उपयोग करें।
- यदि आवश्यक हो तो रस चूसने वाले कीटों से निजात के लिए एज़ाडाईरेक्टिन 0.03% ई सी नीम तेल आधारित (5 मिली/ली) या थायामेथोक्साम 25 डब्लूजी (3 मिली/10ली) या एमीडाक्लोंप्रिड 70 डब्लूजी (1 ग्रा/10ली) का 15 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें।
- छेदकों से 5% से ज्यादा हानि होने पर क्लोरएंट्रिनीलीप्रोल 18.5 एससी (3 मिली/10ली)/ इमामेक्टिन बेन्ज़ोएट 5 एसजी (3 मिली/10 ली) या लेम्डासाईहलोथ्रिन 5 ईसी (1 मिली/ली) का 15 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें।
- कीटनाशी छिड़कने से पहले फलों को तोड़ लें।

कद्दूवर्गीय सब्जियाँ

कद्दूवर्गीय सब्जियों में मुख्य रूप से फल मक्खी का ही प्रकोप होता है। यह मक्खी लगभग इस वर्ग की सभी सब्जियां जैसे– लौकी', करेला, टिंडा, कुंदरु, खीरा, खरबूजा को हानि पहुंचाती है। वयस्क मादा अपने डंक द्वारा इन सब्जियों के फल में अंडे देती है और उनमे से लार्वा (मैगट) निकलकर फल के अन्दर के गूदे को खाकर 7–9 दिन में पूर्णतया विकसित होते हैं। फिर यही मैगट फलों से बाहर निकलकर छलांग लगा देते हैं और भूमि में पहुँच कर प्यूपे बन जाते हैं। 7–11 दिन में ये वयस्क मक्खी बन जाती है और फिर सब्जियों पर अंडे देती हैं।

प्रबंधन –

इसका प्रबंधन सामुदायिक स्तर पर करना अति श्रेष्ठ,

लाभकारी और प्रभावी होता है।

- कीट और रोगरोधी प्रजातियों का चुनाव करें।
- संक्रमित फलों को इकट्ठा करके नष्ट कर दें।
- प्रबंधन हेतु नरनाशी तकनीक का प्रयोग करें। इसमें फेरोमोन पाश का प्रयोग होता है जिसके अंदर एक प्लाईवुड का टुकड़ा लटकाया जाता जो क्यूलयूर और कीटनाशक युक्त होता है। सम्मिश्रित के टुकड़े को हर 2 सप्ताह पर बदल दिया जाता है।
- प्रोटीन प्रलोभन का भी छिड़काव कर सकते हैं जिसमें सम्मिश्रण प्रोटीन और कीटनाशी से बनाया जाता है। इस मिश्रण का पूरे खेत में छिड़काव करने की आवश्यकता नहीं होती बल्कि सीमित डायरे में ही छिड़काव पर्याप्त होता है। छोटे फलों के मुरझाने का कारण फल मक्खी ही होती है।
- आवश्यकता होने पर स्पाइनोसेड 45 एससी (2 मिली/10ली) या साएननट्रिनिलिप्रोल 10.26 ओडी (1.8 मिली/ली) की दर से छिड़काव करें।

टमाटर

टमाटर में फल छेदकों से ही भारी नुकसान होता हैः

चने की सूंडीः यह बहुफलीय भक्षी कीट की सूँडी टमाटर में गोल छेद बनाकर अपने शरीर का आधा भाग अन्दर घुसाकर गूदा खाती है जिस कारण फल सड़ जाता है। इसके वयस्क के शरीर पर बादामी भूरे रंग के बाल होते हैं। अगला पंख पीला भूरा होता है जिसका मध्य भाग काला तथा पीछे के पंखों का मटमैला सफ़ेद होता है।

तंबाकू की सूँडीः यह भी एक बहुफ़सलीय कीट है। इसकी सूंडियां चिकनी और काले रंग की होती हैं। यह टमाटर की फसल को काफी नुकसान पहुंचाता है। सूँडी प्रारम्भ में समूह में रहकर पत्तियों को काटकर खाती है और अधिक प्रकोप होने पर पौधा पत्ताविहीन हो जाता है। सूंडियां रात्रि के समय ज्यादा सक्रिय होती हैं।

सफ़ेद मक्खीः इनके वयस्क और शिशु पत्तियों का रस चूसकर हानि पहुँचाते हैं। यह पत्ती मरोड़क विषाणु भी फैलाते हैं। कभी कभी ग्रसित पत्तियों में काले फफूंद की बीमारी भी लग जाती है।

चेंपाः इसके अभक्र और वयस्क भी पत्तियों के रस चूसते है। इनके कारण पत्तियाँ पीली पड़कर सूख जातीं है और नीचे की तरफ झुक जातीं है।

प्रबंधन –

- भूमि की गहरी जुताई करने से मिट्टी में विद्यमान प्यूपा और सूँडी पक्षियों द्वारा खा लिए जाते हैं या तेज़ धूप द्वारा नष्ट हो जाते हैं।
- टमाटर की 10–15 कतार के बाद गेंदे की एक कतार की रोपाई करने से चने की सूँडी टमाटर में कम लगती है।
- फल छेदक की निगरानी के लिए फेरोमोन पाश 5 प्रति हेक्टेयर की दर से लगायें।
- रस चूसने वाले कीटों से बचाव के लिए इमीडाक्लोप्रिड (2 मिली/10 ली) या थायामेथोक्सम (2 ग्रा/10 ली) का प्रयोग करें।
- ट्राईकोग्रामा काईलोनिस का प्रयोग फल छेदक के नियंत्रण के लिए 50000 प्रति हेक्टेयर की दर से करें।
- फल छेदकों के नियंत्रण के लिए बीटी (1ग्रा/ ली) या एचएनपीवी (250 एलई/हेक्टेयर) की दर से छिड़काव करें।
- फल छेदकों के नियंत्रण के लिए रसायनिक कीटनाशक क्लोरएंट्रिनीलीप्रोल 18.5 एससी (3 मिली/10ली) या फ्लूबेंडियामाइड 39.35 एससी (3 मिली/10ली) या नोवलुरोन 10 ईसी (1 मिली/ली) का प्रयोग करें।
- कीटनाशकों के छिड़काव से पहले फलों को तोड़ लें तथा क्षतिग्रस्त फलों को नष्ट कर दें।
- एक ही कीटनाशक का प्रयोग बार–बार न करें।

गोभीवर्गीय सब्जियां

गोभीवर्गीय सब्जियों में मुख्यतः बंदगोभी, फूलगोभी, ब्रोकोली, गांठगोभी आदि रबी की सब्जियाँ आती हैं। उत्तर भारत में इन सब्जियों में सबसे ज्यादा हानि चेंपे और हीरक पीठ शलभ से ही देखी जाती है। कभी–कभी तंबाकू की

सूँडी और गोभी की तितली की सूँडी द्वारा भी नुकसान देखा जाता है। अगर इन कीटों की पहचान कर ली जाए तो इनके प्रबंधन में आसानी हो जाएगी।

चेंपाः इस कीट के अभक्र और प्रौढ़ पंखहीन हल्के हरे रंग के होते हैं जो पित्ती की निचली सतह पर मिलते हैं। ये पत्तियों, पुष्पों और तनों से रस चूसकर उन्हें नुकसान पहुंचाते हैं। कीट से निकले चिपचिपे पदार्थ से पत्तों पर काली फफूंदी लग जाती है जो पोधों को भोजन बनाने में बाधा डालती है।

हीरक पीठ शलभ (डायमंड बॅक मोथ): यह शलभ भूरे रंग के होते हैं जिनके पंखों पर विशिष्ट सफ़ेद धब्बे होते हैं और इस कारण वह हीरे से दिखाई देते हैं। सूंडियां हल्के हरे रंग की होती हैं और पूरी बढ़ने पर लगभग 1 सेंटीमीटर लंबी, बीच में चौड़ी और दोनों तरफ पतली होती हैं। पत्तों को हिलाने पर सूँडी नीचे की तरफ धागे जैसे पदार्थ की सहायता से लटक जाती हैं जो इनकी खास पहचान हैं। प्रारभिक अवस्था में सूँडी पत्तियों में छेद बनाकर हरित पदार्थ को खाती हैं तथा अधिक संक्रमण होने पर ये सूंडियां गोभी के फल को भी चट कर जाती हैं।

गोभी की तितलीः इसकी सूँडी का रंग हल्का पीला होता है और पूरे बढ़वार पर यह सूँडी 5 सेंटीमीटर लम्बी हो जाती है। छोटी अवस्था में यह समूह में रहती है व बड़ी होने पर इधर उधर फैल कर हानि करती है। यह पत्तियों के बाहरी किनारे से खाकर अंदर की तरफ बढ़ती है और अधिक आक्रमण होने पर पत्तों की शिराएँ ही शेष रह जाती है।

तंबाकू की सूँडीः इस कीट की सूंडियां मखमल के समान काले रंग की होती हैं। यह रात में पत्तों और नई बढ़वार को खाती है तथा दिन में पोधों या मिट्टी में छुपी रहतीं हैं।

हलूलाः इसे छेदक भी कहते हैं। युवा सूंडियां पत्तों में सुरंगें बनती हैं जो सफ़ेद रंग के होते हैं। प्रारभिक अवस्था में सूँडी पत्तियों में छेद काटा है और बाद में फलों में भी छेद कर देता है।

प्रबंधन

- खेत की गहरी जुताई करें ताकि कीट और रोग के जीवाणु पक्षियों द्वारा खा लिए जाएँ अथवा तेज धूप द्वारा नष्ट कर दिये जाएँ।
- फसल की बढ़वार की अवस्था में नीम के अक्र (एन.एस. के.ई.) का 5% घोल बनाकर 2–3 बार छिड़काव करने से कीटों के प्रकोपों में कमी आ जाती है। यह छिड़काव दोपहर के बाद ही करें।
- मित्र कीटों (लेडी बर्ड बीटल, सिरफिड आदि) को बढाने के लिए मुख्य फसल के चारों ओर बीच–बीच में बरसीम, रिजका या सूरजमुखी उगाएँ जिससे चेंपे का प्रकोप कम हो जाता है।
- रस चूसने वाले कीटों से बचाव के लिए एज़ाडाईरेक्टिन 0.03% डब्लूएसपी (नीम तेल आधारित) (5 मिली/ली) या एसिटामिप्रिड 20 एसपी (1 मिली/ली) का प्रयोग करें।
- एन. पी. वी. (250 एलई/है) का छिड़काव तंबाकू की सूँडी के नियंत्रण के लिए करें।
- परजीवी कोटेशिया प्लूटेली का प्रयोग 1000 वयस्क प्रति हेक्टेयर की दर से करने से सुंडियों की संख्या में कमी आती है।
- हीरक पीठ शलभ (डीबीएम) के नियंत्रण के लिए बीटी (1 ग्रा/ली) या नोवलुरोन 10 ईसी (1 मिली/ली) का छिड़काव करें।
- हीरक पीठ शलभ के लिए कलोरएंट्रानिलिप्रोल 18.5 एससी (1 मिली/10ली) या स्पेनोसेड 2.5 एससी (1–1. 5 मिली/ली) या कारटेप (1 ग्रा/ली) या फ़िप्रोनिल 5 एससी (2 मिली/ली) का छिड़काव भी 15 दिन के अंतर से किया जा सकता है।

मिर्च

मिर्च में मुख्य रूप से माइट और थ्रिप्स का ही प्रकोप होता है। कभी–कभी चेंपा और फल छेदकों का भी प्रकोप देखा जाता है।

माइटः इनके शिशु और वयस्क दोनों ही हानिकारक होते हैं। वे अपने थूक से पत्तियों पर जाला बनाते हैं उनका हरा पदार्थ को खाते हैं। इन जालों हजारों माइट होती हैं और इनके प्रभाव से पत्तियाँ टेढ़ी हो जाती हैं और उन पर धब्बे पड़ जाते हैं।

थ्रिप्सः इनके भी शिशु और वयस्क पत्ती के हरे भाग को खरोंच कर खाते हैं, जिससे पत्तियों पर धब्बे पड़ जाते हैं। यह कोमल तनों और फूल का रस भी चूसते हैं जिसके फलस्वरूप फल और कलियाँ सिकुड़ जाती हैं। इनके कारण विषाणु की बीमारियाँ भी मिर्ची में फैलती है। थ्रिप्स का प्रभाव सूखे खेतों मैं ज्यादा होता है।

चेंपाः ये पंख वाले और पंखविहीन दोनों प्रकार के होते हैं। ये पत्तियों और कोमल तनों के रस चूसकर पौधे को कमजोर कर देते हैं।

फल छेदकः इस कीट की सुंडियां फलों में घुसकर उन्हें खराब कर देती हैं।

प्रबंधन

- माइट को नियंत्रित करने के लिए इमामेक्टिन बेन्ज़ोएट 5 एसजी (4 ग्रा/10ली) या प्रोपेगाइट (2 मिली/ली) या डाईफेनथ्यूरोन 50 डब्लूपी (1 ग्रा/ली) या स्पाइरोमेसीफिन 22.9 एससी (0.8 मिली/ली) का छिड़काव करें।
- थ्रिप्स और चेपें के प्रबंधन के लिए इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एसएल (2 मिली/10ली) या एसिटामिप्रिड 20 एसपी(2 मिली/10ली) या थायाक्लोप्रिड़ 21.7 एससी(5 मिली/10ली) का छिड़काव करें।
- चेपें के लिए फिप्रोनिल 5 एससी (2 मिली/ली) या पाइरीप्रॉक्सिफ़ेन 10 (2 मिली/ली) का भी छिड़काव किया जा सकता है।
- थ्रिप्स और फल छेदक के नियंत्रण के लिए इमामेक्टिन बेंज़ोएट 5 एसजी (2 ग्रा/10ली) या फिप्रोनिल 5 एससी (2 मिली/ली) का छिड़काव करें।
- फल छेदकों के लिए नोवलुरोन 10 ईसी (1 मिली/ली) या क्लोरएंट्रिलिनीप्रोल 18.5 एससी (3 मिली/10ली) का छिड़काव भी किया जा सकता है।

बुन्देलखण्ड में ड्रेगन फ्रूट की खेती

व्ही.के. सिंह, के.सी. शुक्ला एवं शिवानी नायक
कृषि महाविद्यालय, टीकमगढ़ –472001 (म.प्र.)।

आम जीवन में सम्पूर्ण तथा संतुलित आहार हेतु फलों का अहम् योगदान है। जिसमें से मुख्य है आम, अमरूद, केला, जामुन, सेवा, पपीता इत्यादि। आधुनिक युग में कुछ नये फल अपना स्थान बनाते जा रहे हैं जिसमें मुख्य नाम है ड्रेगन फ्रूट।

इस फल के कई स्वास्थ्यवर्धक फायदे हैं, इस फल को हिंदी में पिताया तथा 'कमलम' भी कहते हैं। यह स्वाद में मीठा तथा कई प्रकार की बीमारियों के लिए फायदेमंद है। इसमें बहुमूल्य पोषक तत्व पाये जाते हैं। इसका रंग ऊपर से गुलाबी लाल होता है और गूदे का रंग सफेद, पीला और लाल तथा उसमें काले रंग के बीज होते हैं। यह स्वाद में मीठा होता है इसका उपयोग रस, सलाद, फल तथा आर.टी.एस. (Ready to serve) के रूप में किया जाता हैं।

इस फल में कई प्रकार के पोषक तत्व पाये जाते हैं जिसमें मुख्यतः विटामिन्स खनिज लवण (कैन्शियम, मैग्नीशियम तथा पोटेशियम) तथा फाईबर आदि पाये जाते हैं। जिससे विटामिन बी–काम्पलेक्स मुख्य स्त्रोत है जिसमें मुख्यतः ओमेगा–3 पाया जाता है साथ ही इसमें विटामिन सी और ई मौजूद होते हैं। ड्रैगन फ्रूट अपने पोषक तत्वों से भरपूर होने के कारण ऊष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में सुपर फूडस के नाम से भी जाना जाता है। यह विभिन्न पोषक तत्वों से भरपूर होता है और इसमें केलौरी की मात्रा भी कम होती है। यह पुरानी बीमारियों को नियंत्रण करने में मदद करता है और आहार नलिका के स्वास्थ्य में सुधार करता है तथा शरीर की रोग प्रतिरोध क्षमता भी बढ़ाने में मदद करता है उपरोक्त रासायनिक संघटन के परिणामस्वरूप यह फल वजन घटाने, मधुमेह नियंत्रण तथा कोलेस्ट्राल कम करने के लिए अच्छा विकल्प होता है।

ड्रैगन फ्रूट को तीन प्रकार में वर्गीकृत किया जाता है।

1. छिलका लाल तथा गूदा सफेद (*हायलोसेसियास अनडेटस*),
2. छिलका पीला तथा गुदा सफेद (*हायलोससियस पालीरिजस*),
3. छिलका लाल तथा गूदा लाल गुलाबी (हाय.पालीरिजस)।

इसमें कैलोरी कम मात्रा में तथा फेनालिक्स, फ्लेवोनोइटस और एंटीआक्सीडेंट भरपूर मात्रा में होते हैं। इसके 100 ग्राम फलों में जल की मात्रा 83–88 प्रतिशत, हल्का अम्लीय 0.20 to 0.30 mg, विटामिन-C- 4-10 mg./100 ग्राम पाये जाते हैं। कार्बनिक अम्ल से फलों का स्वाद, रंग और सुगंध के साथ–साथ जैसे आर्गेनोलेप्टिक गुणों को भी प्रभावित करते हैं। वे फलों में कटाई बाद के प्रबंधन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है जैसे– Shelf life (जीवन क्षमता), स्थिरता और सूक्ष्म जीवाणु और कवक से सुरक्षा करता है।

जलवायु

ड्रैगन फ्रूट कैक्टेंसी परिवार का पौधा है। इसे पर्याप्त पानी की आवश्यकता होती है, क्योंकि यह अन्य कैक्टि परिवार के विपरीत ऊष्णकटिबंधीय वर्षा वन में उत्पन्न होते हैं इसलिए कम वर्षा वाले क्षेत्रों को छोड़कर भारत के अधिकांश हिस्सों में उगाया जा सकता है प्रतिवर्ष 1145 मिमी. अधिक वर्षा वाले क्षेत्र में आसानी से उगाया जा सकता है, इसके लिए शुष्क उष्णकटिबंधीय जलवायु अच्छी रहती है तथा औसत तापमान 20-30^{0}C में इस फल के अधिक उत्पादन हेतु उचित तापक्रम 20-30^{0}C होता है। यह अधिकतम 40^{0}C से अधिक हो जाते हैं तब पौधा क्षतिग्रस्त हो जाता है तथा पीला पड़ जाता है। यह अधिक तथा भारी वर्षा वाले क्षेत्रों के लिये उपयुक्त नहीं है क्योंकि अधिक तथा भारी वर्षा वाले क्षेत्रों के लिये उपयुक्त नहीं है। क्योंकि अधिक तथा भारी वर्षा के कारण इसका तना गलने लगता है तथा फूल गिर जाते हैं जिससे फलोंत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। अच्छी गुणवत्ता और उपज ज्यादा प्राप्त

होता है लेकिन यह 40^0C तक Mini. 7^0C तक सामना कर सकता है 40^0C से अधिक होने पर पौधे क्षतिग्रस्त और तना पीला हो जाएगा। भारी वर्षा वाले क्षेत्र में उपयुकत नहीं हैं क्योंकि फूल गिर जाते है तना गलने लगता है।

मृदा

फल को विभिन्न प्रकार की मृदा में उगाया जाता है इसके लिये मृदा का पी.एच. 5.5 से 7 के बीच होना चाहिए। यह बलुई मिटटी में अच्छी तरह उगाया जा सकता है। मृदा में अच्छे कार्बनिक पदार्थ प्रचुर मात्रा में हो तो रेतीली मृदा में भी सफलतापूर्वक इसे उगा सकते हैं।

वानस्पतिक प्रवर्धन :–

इस फल का व्यसावसायिक प्रवर्धन तना कलम के द्वारा होता है। आमतौर पर 20–25 से.मी. लम्बी तथा कलम का उपयोग रोपण के लिए करते हैं। कलम रोपण से 1–2 दिन पहले तैयार की जानी चाहिये और कटे हुये लैटेक्स को सूखने दिया जाता है। कमल कीटों से क्षति कम होती है। बीमारियों से रोकथाम के (सड़न रोग से) के लिए कलम को रोपण से 5–7 दिन पूर्व कवकनाशियों से उपचारित कर लेना चाहिए। तना कलम तैयार करने के लिए 12X30 से. मी. आकार की पालीथीन का उपयोग करना चाहिए, जिसमें मिटटी, खाद और रेत का अनुपात 1:1:1 होना चाहिए बैग को छायादार स्थान पर रख देनाा चाहिए। 5–6 महीने में पौधे रोपण के लिए तैयार हो जाते हैं।

रोपण

ड्रैगन फ्रूट की खेती के लिए खुले क्षेत्र रोपण के लिये उपयुक्त रहता है। आमतौर पर सिंगल सिस्टम का उपयोग रोपण के लिए करते हैं। जिसमें इसे 3x3 मी. की दूरी पर लगाते हैं पोल की ऊंचाई 1.5 से 2 मी. तक होनी चाहिए जिससे वह सहारा लेकर आसानी से बढ़चढ़ सके।

प्रशिक्षण प्रणाली :–

ड्रैगन फ्रूट का पौधा ऊपर की ओर चढ़ने वाला एक एपिफाइटिक कैक्टस है, ड्रैगन फ्रूट के पौधे तेजी से बढ़ने वाली लतायुक्त होते हैं यह प्रारम्भिक अवस्था के दौरान अधिक घनी शाखाओं का उत्पादन करते हैं। इसकी पार्श्व कलियों और शाखाओं को बढ़ने दिया जाता है। मुख्य तने को काट देते हैं जिससे नई शाखायें निकलती हैं और रिंग पर चढ़कर लताओं की एक छतरी जैसी संरचना बन जाती है। जहां पर फूल एवं फल विकसित होते हैं। अतः इन्हें ऊपर की ओर बढ़ने के लिए लकड़ी या दीवार के सहारे की आवश्यकता होती है।

पुष्पन

फूल छोटे सर्पिल प्रकार से निकलते हैं। ये 10–15 दिनों में कलियों के रूप में विकसित होते हैं। यह उभयलिंगी तथा दसकी लम्बाई 25–30 से.मी. होती है। इसके फूलों का रंग हल्का पीला–हरा तथा बैंगनी होता है। यह केवल रात में ही खिलते हैं। इसके फूल मई से अगस्त महीने में ही खिलते हैं।

खाद एवं उर्वरक

ड्रैगन फ्रूट के अधिक उत्पादन के लिए खाद एवं उर्वरक की आवश्यक होती है। रोपण के दौरान सामान्यतः 10 से 15 कि.ग्रा. गोबर की खाद तथा 100 ग्राम सिंगल सुपर फास्फेट प्रति पौधा की दर से देने की आवश्कता होती है। प्रथम दो वर्षो में प्रत्येक पौधे को प्रति वर्ष 300 ग्रा. नत्रजन, 200 ग्रा. फॉस्फोरस एवं पोटेशियम दिया जाता है। प्रत्येक परिपक्व पौधें को प्रतिवर्ष 540 ग्रा. नत्रजन, 720 ग्रा. फास्फोरस एवं 300 ग्राम पोटेशियम दिया जाना चाहिए। पोषक तत्वों की इस मात्रा को कम से कम चार हिस्सों में बांटकर प्रत्येक तीन माह के अंतराल पर देना चाहिए।

जल प्रबंधन

ड्रैगन फ्रूट के पौधे बहुत कम वर्षा में कई महीनों तक सूखे को सहन करने वाले होते है। फसल में अधिक मात्रा में जल की आवश्यकता होती है। किन्तु दीर्ध अवधि तक सूखा पड़ने पर सिंचाई का प्रयोग करना चाहिए। फूल खिलने से पूर्व की अवधि में सूखापन रखा जाता है ताकि अधिक से अधिक फूल खिल सकें। मृदा में नमी बनाये रखना चाहिए। अधिक नमी से खरपतवार अधिक होते है और अत्यधिक सिंचाई के पश्चात या फिर वर्षा के मौसम में उचित जल निकास होना चाहिए, अन्यथा फफूंद जनित रोग पौधे में लग सकते हैं अथवा तना में गलन आ जाती है।

देखभाल एवं कटाई

शीतोष्ण क्षेत्र में पुष्पन मई–जून के दौरान प्रारम्भ होता है। पौध रोपण के 6 से 9 माह पश्चात फूल लगने शुरू होते हैं। अपरिपक्व फल का छिलका चमकदार एवं हरे रुंग का होता है। धीरे–धीरे पकने के बाद यह लाल रंग में बदल जाता है तथा यह 7 दिन में पक जाता है। फल सितम्बर से अक्टूबर में पक जाते है। तीन साल पुराने पेड़ से 30–35 कि.ग्रा. तक फल प्राप्त होते हैं।

भण्डारण

भण्डारण के दौरान ड्रेगन फ्रूट की गुणवत्ता बनी रहे इसके लिए तापमान प्रबंधन का अहम योगदान है। आमतौर पर कमरे के तापक्रम पर यह 5–7 दिनों तक भण्डारित किया जा सकता है। जबकि शीत भण्डारगृहों में 18^0C तापमान पर 10 से 12 दिनों तक तथा 8^0C तापमान पर यह फल 20–21 दिनों तक आसानी से भण्डारित किया जा सकता है।

सनबर्न

यह विकार भारतवर्ष में अधिकांशतः पौधों में देखा जाता है। यह लक्षण आमतौर पर मार्च और अप्रैल के महीने में देखने को मिलते है। जब न्यूनतम तथा अधिकतम तापक्रम 38^0C तापमान से अधिक हो जाता है। अतः इसका उत्पादन छायादार स्थानों अथवा नेट हाऊस में किया जाना चाहिए।

अधिक आय के लिए रबी के मौसम में सब्जियों की खेती

आर. के. यादव, जोगेंद्र सिंह, हर्षवर्धन चौधरी, भोपाल सिंह तोमर एवं सुमन लता
शाकीय विज्ञान संभाग, भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली 110 012

सब्जी दैनिक आहार का एक आवश्यक अंग है। विभिन्न प्रकार की सब्जियों को भोजन में शामिल करने से शरीर को आवश्यक विटामिन, लवण, कार्बोहाइड्रेट, और प्रोटीन प्रचुर मात्रा में मिलते है। वर्तमान में हमारे देश का कुल सब्जी उत्पादन 188 मिलियन टन है तथा देश में सब्जियों के अंर्तगत कुल भूभाग 10.3 मिलियन हेक्टेयर है। पिछले कई वर्षों से हमारे देश की सब्जी उत्पादकता में काफी बढोत्तरी हुई है परन्तु हमारे देश की सब्जी उत्पादकता विकसित देशों की उत्पादकता (19.3 टन/हे0) से काफी कम हैं। इसिलिये सब्जियों की प्रतिव्यक्ति उपलब्धता को 300 ग्राम प्रतिदिन तक पहुचाने के लिये सब्जियों के उत्पादन में विभिन्न उन्नत प्रौधोगिकियों को लाने की आवश्यकता है। यद्यपि सब्जियाँ साल भर उगाई जाती हैं। परन्तु रबी के मौसम में गोभी वर्गीय, पत्तेदार एवं जड. वाली सब्जियों की उपलब्धता अधिक रहती है।

1. रबी का मौसम सब्जियों की खेती के लिये वर्षा एवं गर्मी के मौसम से काफी अनुकूल रहता है।
2. इस मौसम में बीमारियों एवं कीडों का प्रकोप भी कम रहता है।
3. शीतकाल में विदेशी सब्जियों की खेती की सम्भावना हमारे देश में पिछले कुछ सालों से बढी है।
4. संरक्षित संरचना में बेमौसमी सब्जियों जैसे टमाटर, चैरी टमाटर, पार्थेनोकार्पिक खीरा, रंगीन शिमला मिर्च आदि की खेती की जा सकती है।

बेमौसमी एवं विदेशी सब्जियों की मांग शहरों एवं पाँच सितारा होटलों में काफी रहती है। यदि इन सब्जियों के विपणन एवं निर्यात की समुचित व्यवस्था हो तो इनकी खेती भी काफी लाभप्रद हो सकती है।

सब्जियों का महत्वः आजकल के जीवन में जब सभी लोग शाकाहारी भोजन की तरफ जा रहे हैं ऐसे में सब्जियों का महत्व निम्नलिखित कारणों से बढता ही जा रहा है।

1. सब्जियां पोषकतत्वों का महत्वपूर्ण एवं सस्ता स्त्रोंत।
2. संतुलित आहार के लिये सब्जियां आवश्यक।
3. सब्जियों में एंटी आक्सीडेंट की प्रचुर मात्रा।
4. विभिन्न प्रकार के रंग, आकार, एवं महक के कारण भोजन को जायकेदार बनाती है।
5. कम जमीन से कम समय में अत्यधिक आय का साधन।
6. हर प्रकार के मौसम एवं कृषि चक्र/पद्वति में समायोजन।
7. निर्यात एवं प्रसंस्करण की संभावना।
8. सब्जियों का पौध एवं बीज उत्पादन एक लाभप्रद व्यवसाय।

पौध उत्पादनः शीतकाल में उगायी जाने वाली अधिकांश सब्जियों की नर्सरी में पौध उगाकर रौपाई की जाती है परन्तु कुछ सब्जियों को सीधे खेत में बुवाई भी की जाती है। नर्सरी 40 मेस नाइलोन के जालघर में तैयार करनी चाहिए इससे कीटों से रोकथाम हो जाती है। नर्सरी उची क्यारियों में एवं कतारें में लगानी चाहिए। यदि सम्भव हो तो नर्सरी मृदा रहित प्रो ट्रे में उगायें इससे जमाव अच्छा एवं पौधें मजबूत होते हैं। नर्सरी में पौधों को पूरी बढवार के समय विशेष देख रेख में तैयार किया जाना चाहिए। जब पौध 10–15 सेमी0 लम्बी एवं 4–6 पत्तियां पूर्ण रूप से विकसित हो जाऐं तो भली प्रकार से तैयार खेतों में रौपाई करनी चाहिए। पौधों की रौपाई सायःकाल में जब धूप कम हो, करनी चाहिए एवं रौपाई के तुरन्त बाद हल्की सिचाई कर देनी चाहिए।

प्रजातियाँः आज देश में लगभग अधिकांश सब्जियों की उन्नतशील एवं संकर किस्में उपलब्ध है इन किस्मों की पैदावार अधिक है एवं इनमें बीमारियों या प्रतिकूल दशाओं

से लड़ने की क्षमता अधिक होती हैं। यदि इन उन्नतशील प्रजातियों का बीज लगाया जाये एवं उचित फसल प्रबन्धन किया जाये तो किसान खेती में आने वाली लागत से कई गुणा लाभ प्राप्त कर सकते हैं। इसी को ध्यान में रखते हुए रबी के मौसम में उगायी जाने वाली प्रमुख सब्जी फसलों का विवरण नीचे दिया गया है।

फसल	प्रजाति	नर्सरी / बुवाई का समय	बीज की मात्रा / है0	रौपाई की आयु (सप्ताह)	रौपाई की दूरी (सेमी0)	खाद / उर्वरक प्रति है0	उपज / है0 (कुन्तल)
टमाटर	पूसा सदाबहार पूसा रोहिणी पूसा हाइब्रिड – 1	नवम्बर – दिसम्बर	300 ग्रा. (मुक्त परागण प्रजाति) 150 ग्रा. (संकर)	4	60 X 45	20 टन गोबर की सडी खाद एवं एन : पी : के : @ 150 : 60 : 60 किग्रा.	400 (मुक्त परागण प्रजाति) 700(संकर)
मिर्च	पूसा ज्वाला पूसा सदाबहार	नवम्बर – दिसम्बर	800 ग्रा.	7	60 X 45	20 टन गोबर की सडी खाद एवं एन : पी : के : @ 100 : 80 : 80 किग्रा.	90 – 110 (हरी) 9 – 10 (सूखी)
शिमला मिर्च	कैलिफोर्निया वण्डर,	नवम्बर – दिसम्बर	800 ग्रा.	7	60 X 45	20 टन गोबर की सडी खाद एवं एन : पी : के : @ 120 : 100 : 100 किग्रा.	80
फूलगोभी	पूसा स्नोबॉल संकर–2, पूसा फूलगोभी संकर–301, पूसा शरद, पूसा पौषजा	अक्टूबर – दिसम्बर	400 ग्रा.	5 – 6	60 X 45	20 टन गोबर की सडी खाद एवं एन : पी : के : @ 120 : 60 : 60 किग्रा.	250(मुक्त परागण प्रजाति) 400 (संकर)
बंदगोभी	गोल्डन एकर, पूसा कैबेज –1 (संकर) पूसा रेड कैबेज संकर –1	सितम्बर – अक्टूबर	500 ग्रा.	5	45 X 30	20 टन गोबर की सडी खाद एवं एन : पी : के : @ 120 : 60 : 60 किग्रा.	300
ब्रोकोली	पूसा ब्राकोली के0 टी0 एस0 – 1	सितम्बर – नवम्बर	400 ग्रा.	4	45 X 30	20 टन गोबर की सडी खाद एवं एन : पी : के : @ 120 : 60 : 60 किग्रा.	150 – 200
प्याज	पूसा रिद्धि, पूसा रेड, पूसा माधवी, पूसा सोना, पूसा षोभा	अक्टूबर – नवम्बर	10 किग्रा.	7	20 X 10	20 टन गोबर की सडी खाद एवं एन : पी : के : @ 150 : 60 : 90 किग्रा., सल्फर 10 किग्रा. / हे0	300
गाजर	पूसा वृष्टि, पूसा रूधिरा, पूसा आसिता, पूसा वसुधा (संकर), पूसा नयनज्योति (संकर)	अक्टूबर – नवम्बर	6 किग्रा.	–	30 X 8	20 टन गोबर की सडी खाद एवं एन : पी : के : @ 50 : 40 : 50 किग्रा.	300

मटर	अर्केल, पूसा श्री, पूसा प्रबल	अक्टूबर	75 किग्रा.	–	30 X 10	20 टन गोबर की सडी खाद एवं एन : पी : के : @ 30 : 60 : 60 किग्रा.	80 – 100
मूली	पूसा देशी, पूसा हिमानी, जापानीज व्हाइट,	अक्टूबर – नवम्बर	10 किग्रा.	–	20 X 8	20 टन गोबर की सडी खाद एवं एन : पी : के : @ 50 : 40 : 50 किग्रा.	200 – 250
पालक	आलग्रीन, पूसा हरित, पूसा भारती	अक्टूबर – नवम्बर	25 कि.ग्रा	–	30 X 5	20 टन गोबर की सडी खाद एवं एन : पी : के : @ 60 : 60 : 60 किग्रा.	300–350
विलायती पालक	पूसा विलायती पालक, वर्जिनिया स्वॉय	नवम्बर	30 कि.ग्रा	–	30 X 5	20 टन गोबर की सडी खाद एवं एन : पी : के : @ 60 : 60 : 60 किग्रा.	90–100
मेथी	पूसा अर्ली बंचिंग व पूसा कसूरी।	अक्टूबर – नवम्बर	20 कि.ग्रा	–	30 X 5	20 टन गोबर की सडी खाद एवं एन : पी : के : @ 25 : 60 : 60 किग्रा.	100
साग सरसों	पूसा साग–1।	सितम्बर –अक्टूबर	3 कि.ग्रा	–	45 X 10	20 टन गोबर की सडी खाद एवं एन : पी : के : @ 80 : 60 : 60 किग्रा.	450–500
बथुआ	पूसा बथुआ–1, पूसा ग्रीन	अक्टूबर – नवम्बर	2.0 कि.ग्रा	7	45 X 20	20 टन गोबर की सडी खाद एवं एन : पी : के : @ 60 : 60 : 60 किग्रा.	300–350

रबी की सब्जियों की प्रमुख बीमारियॉ एवं कीट

फसल	प्रमुख बीमारियाँ एवं रोकथाम	प्रमुख कीट एवं रोकथाम
टमाटर	**डैम्पिंग आफ** – मैंकोजेब @ 3 ग्राम/किग्रा. बीज या 1 ग्राम मैंकोजेब एवं 1 ग्राम कार्बन्डाजिम/किग्रा. बीज। **लीफ कर्ल विषाणु** – इमिडाक्लोप्रिड @ 3–5 मिली./10 ली. या एसिटामिप्रिड 3–5 ग्राम/10 ली. पानी। **लेट ब्लाइट** – रीडोमिल @ 1ग्राम/ली. पानी।	**फ्रूट बोरर** – नीम अर्क 5 प्रतिशत का एक सप्ताह के अन्दर छिड़काव करे। स्पिनोसेड @ 1 मिली./3 ली. पानी। **सफेद मक्खी** – येलो स्टिकी ट्रैप @ 20 प्रति हेक्टेयर के दर से लगायें ट्राइजोफॉस @ 1 मिली./ली. पानी या इमिडाक्लोप्रिड @ 3–5 मिली./10 ली. पानी या एसिटामिप्रिड 3–5 ग्राम/10 ली. पानी।
मिर्च	**एन्थ्रैकनोज** – डाइथेन एम. – 45 @ 2ग्राम/ली. पानी या ब्लाइटाक्स @ 2 ग्राम/ली. पानी। **लीफ कर्ल विषाणु** – मेटासिस्टाक्स @ 1.5 मिली./ली. पानी या इमिडाक्लोप्रिड @ 3–5 मिली./10 ली. पानी या एसिटामिप्रिड 3–5 ग्राम/10 ली. पानी ।	**एफिड** – इमिडाक्लोप्रिड @ 3–5 मिली./10 ली. पानी या एसिटामिप्रिड 3–5 ग्राम/10 ली. पानी । **माइट** – स्पाइरोमेसीफेन @ 1 मिली./ली. पानी।

प्याज	**पर्पिल ब्लॉच** – मेटासिस्टाक्स @ 2 मिली./ली. पानी या फिप्रोनिल @ 1 मिली./ली. पानी। **स्टेमफीलियम ब्लाइट** – साफ (मैंकोजेब + कार्बन्डाजिम) @ 1 ग्राम/ली. पानी	**थ्रिप्स** – फिप्रोनिल @ 1 मिली./ली. पानी।
फूलगोभी	**ब्लैक राट** – गर्म पानी 30^0 सेंटी0, 30 मिनट तक बीज रखे। स्ट्रेपटोसाईक्लिन @ 100 पी.पी. एम	**एफिड** – इमिडाक्लोप्रिड @ 3–5 मिली./10 ली. पानी या एसिटामिप्रिड 3–5 ग्राम/10 ली. पानी । **डायमण्ड बैक मोथ** – नीम अर्क 5 प्रतिषत का एक सप्ताह के अन्दर छिड़काव करे। इन्डोक्साकार्ब @ 3–5 मिली./10 ली. पानी या डेल्टामेथ्रिन 3–5 मिली./10 ली. पानी या 25 लाइन गोभी के बाद एक लाइन सरसों लगाये।
मटर	**पाउडरी मिल्ड्यू** – बैविस्टीन @ 2 ग्राम/ली. पानी या कैराथेन @ 2 मिली. /ली. पानी	

सर्दियों में कम लागत वाले पॉलीहाउस में उच्च मूल्य की सब्जियाँ

फसल	प्रजाति	बुवाई का समय	रौपाई की दूरी (सेमी.)	पहली तुडाई (दिनो में)	उपलब्धता (तक)	उपज/है0 (कुन्तल)
खीरा	पूसा पार्थिनोकार्पिक खीरा–6, पूसा पिकलिंग खीरा–8	अक्टूबर के तीसरे सप्ताह से मार्च के पहले सप्ताह तक	60 X 45	45	मार्च प्रथम सप्ताह	1150
शिमला मिर्च	पूसा कैप्सिकम–1	अक्टूबर प्रथम सप्ताह	60 X 45	75	अप्रैल प्रथम सप्ताह	520
टमाटर	पूसा रक्षित	अक्टूबर प्रथम सप्ताह	60 X 60	70	अप्रैल प्रथम सप्ताह	1100
	पूसा चैरी टमाटर–1, पूसा गोल्डन चैरी टोमेटो–2	अक्टूबर प्रथम सप्ताह	60 X 60	70	अप्रैल प्रथम सप्ताह	300
चप्पन कद्दू	पूसा पसंद, पूसा श्रेयष, पूसा अलंकार	अक्टूबर द्वितीय सप्ताह	75 X 60	45	मार्च दूसरा सप्ताह	900
खरबूज	पूसा सरदा,	अगस्त–सितम्बर	60 X 60	80	नवम्बर – दिसम्बर	550

इसी प्रकार यदि किसान उपर्युक्त अत्यधिक पैदावार देने वाली नई नई प्रजातियों विशेषकर रोगरोधित एवं संकर प्रजातियों के बीज लगाने के साथ, सब्जी लगाने की नई विधियों, खरपतवार एवं बीमारियों तथा कीड़ों की रोकथाम के लिये उपलब्ध नये रासायनिक दवाओं, सिंचाई के आधुनिक तरीकों जैसे स्प्रिंकलर एवं ड्रिप सिचाई पद्धतियों का उपयोग अपनी खेती में करें तो वे अपनी कृषि में आने वाली लागत को कम करके उससें कई गुणा अधिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

मूंग तथा अरहर उत्पादन तकनीकी पर आधारित प्रथम पंक्ति प्रदर्शन के सफल अनुभव

उमा साह एवं जीतेन्द्र ओझा
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर

प्रथम पंक्ति प्रदर्शन, राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान तंत्र के कृषि वैज्ञानिकों व कृषक समुदाय के बीच सीधा संवाद स्थापित करने का एक विशिष्ट व महत्वपूर्ण समन्वय बिंदु है जिसके अंतर्गत नवीन उन्नत फसल उत्पादन तकनीकों का वैज्ञानिकों की देख–रेख में चयनित भागीदार कृषकों के प्रक्षेत्रों पर विकसित उन्नत तकनीकों की क्षमता का प्रदर्शन किया जाता है।

प्रथम पंक्ति प्रदर्शन के अंतर्गत वैज्ञानिक,विकसित तकनीकीयों के प्रदर्शनों की योजना, निष्पादन और निगरानी में सीधे तौर पर शामिल होते हैं, साथ ही वैज्ञानिक, कृषकों के प्रक्षेत्रों से प्रदर्शित उन्नत तकनीकों पर उनकी सीधी प्रतिक्रिया प्राप्त करते हैं जो वैज्ञानिकों को तदनुसार अनुसंधान कार्यक्रम में सुधार व कृषक उन्मुखी बनाने में सहायता करता है। दूसरी ओर प्रथम पंक्ति प्रदर्शन वैज्ञानिकों को कृषकों के स्तर पर उपलब्ध संसाधनों को समझने और उनके प्रक्षेत्रों में अनुकूलन क्षमता के लिए विकसित तकनीकीयों को संशोधित करने का अवसर प्रदान करते हैं।

प्रथम पंक्ति प्रदर्शन के उद्देश्य कृषकों के प्रक्षेत्रों पर उन्नत फसल उत्पादन तकनीकीयों का प्रदर्शन करना तथा विभिन्न प्रकार के विविधीकरण और संसाधनों के कुशल प्रबंधन के लिए विकसित नवीन उन्नत प्रजातियों/तकनीकीयों को लोकप्रिय बनाना है।

प्रथम पंक्ति प्रदर्शन के द्वारा प्रसारित दलहन उत्पादन तकनीकी

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर देश में दलहनी फसलों की उत्पादकता को बढ़ाने के उद्देश्य से विभिन्न दलहनी फसलों की उन्नत उत्पादन तकनीकीयों के विकास में अग्रसर है। विकसित तकनीकी उत्पादन बढ़ाने के साथ साथ कृषकों की आय को बढ़ाने का एक सफल आयाम प्रदान करती है। इस दिशा में संस्थान द्वारा प्रतिवर्ष चयनित कृषकों के प्रक्षेत्रों पर उन्नत दलहन उत्पादन तकनीकों के प्रथम पंक्ति प्रदर्शन लगवाये जाते है। वर्ष 2021–22 में संस्थान द्वारा लगवाये गये, जिनमें कुछ सफल प्रदर्शनों के परिणामों के विवरण इस प्रकार है :

मूंग की उन्नत उत्पादन तकनीकी से अतिरिक्त आय

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर द्वारा विकसित,बसंत/ग्रीष्म ऋतु में उत्पादन के लिए उपयुक्त मूंग की उन्नत प्रजाति,आईपीएम 205–7 (विराट) जो 52–56 दिनों में पककर तैयार हो जाती है तथा इसकी औसत उपज 10–11 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है फतेहपुर जनपद में प्रथम पंक्ति प्रदर्शन के अंतर्गत इस प्रजाति को कृषकों की भागीदारी में उनके प्रक्षेत्रों में प्रदर्शित किया गया, जिसमें श्री अरविंद वर्मा भी सम्मिलित थे। श्री अरविंद वर्मा, उत्तर प्रदेश के फतेहपुर जनपद के खजुहा ब्लॉक के फरीदपुर गांव के एक प्रगतिशील किसान हैं। श्री वर्मा लगभग 6 हेक्टेयर सिंचित भूमि पर धान, गेहूं, आलू, सरसों, धनिया, मूंग और उड़द आदि प्रमुख फसलों की खेती करते हैं। श्री अरविंद वर्मा वर्ष 2022 में धान–धनिया–मूंगबीन फसल चक्र में संस्थान द्वारा मूंग पर कराये गए प्रथम पंक्ति प्रदर्शन के लिए भागीदार किसान बने। उन्होंने एक हेक्टयर भूमि पर

मूंग की कम अवधि की उन्नत प्रजाति आईपीएम 205–7 (विराट) का प्रदर्शन अनुशंसित उत्पादन तकनीकीयों को ध्यान में रखते हुये किया। श्री वर्मा ने आईपीएम 205–7 (विराट) की बुवाई पूर्व सिंचाई के बाद दिनांक 12 मार्च 2022 को सम्पन्न कर दी। प्रारंभिक फसल वृद्धि चरण में स्पोडोप्टेरा प्रबंधन के लिए, उन्होंने क्लोरेंट्रानिलिप्रोल 18.5 SC, 2ml/10 लीटर पानी का छिड़काव किया साथ ही कीटनाशक थियामेथोक्सम @2.5 ग्राम/10 लीटर पानी में दो बार प्रयोग किया।श्री अरविन्द ने देशी मूंग की प्रजाति (10.5 क्विंटल/हेक्टेयर) की तुलना में प्रदर्शन क्षेत्र से लगभग 13.4 क्विंटल/हेक्टेयर उपज प्राप्त की।उपज लाभ के कारण ही श्री अरविन्द को 174000 रुपये/हेक्टेयर की आय अर्जित हुई। प्रदर्शन से प्राप्त उपज और आय के अलावा, प्रदर्शन के दौरान आईपीएम 205–07 को अगेती प्रजाति के रूप में और उच्च पौध विकास के लिए भागीदार किसानों द्वारा प्रजाति को प्राथमिकता दी गई।

इसी क्रम में श्री कृपा शंकर उत्तर प्रदेश राज्य के फतेहपुर जिले के खजुहा ब्लॉक के फरीदपुर गांव के एक स्नातक प्रगतिशील किसान हैं। वह लगभग 3 हेक्टेयर भूमि पर मुख्य रूप से धान, आलू, सरसों, गेहूं और मूंग आदि फसलों की खेती करते हैं। उन्होंने भा.कृ.अनु.प.–भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर द्वारा कराये गए प्रदर्शनों में सरसों की फसल के बाद एक हेक्टेयर भूमि पर मूंग की प्रजाति आईपीएम 410–3 (शिखा) के प्रदर्शन में भागीदारी की, जिसके लिए उन्हें 25 किलोग्राम उन्नत मूंग की प्रजाति आईपीएम 410–3 (शिखा) प्रदान की गई। मूंग की यह उन्नत प्रजाति ग्रीष्म या वसंत ऋतु में खेती के लिए उपयुक्त है जो 65–70 दिनों में पक जाती है और जिसकी उत्पादन क्षमता 11–12 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है।श्री कृपा शंकर ने अनुशंसित सिंचाई कार्यक्रम का पालन कर 15 मार्च 2022 को मूंग की बुवाई की।फसल में कीट के प्रबंधन के लिए उन्होंने कीटनाशक क्लोरेंट्रानिलिप्रोल 18.5 एससी (2 मिली/10 लीटर पानी) का दो बार प्रयोग किया। इसके पश्चात श्री कृपा शंकरने 14 मई 2022 को फसल की कटाई की तथा देशी प्रजाति (10.2 क्विंटल/हेक्टेयर) की तुलना में प्रदर्शन क्षेत्रों से 17.5 क्विंटल/हेक्टेयर की उपज प्राप्त की।

अरहर की उन्नत प्रजाति द्वारा किसान की आमदनी में 30 प्रतिशत की व्रद्धि

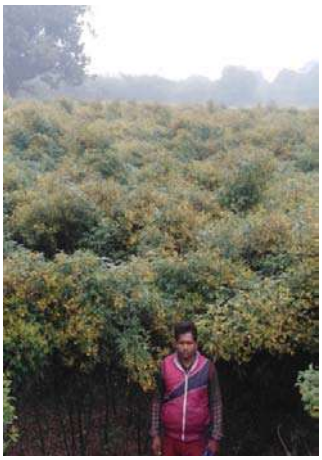

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर द्वारा विकसित अरहर की उन्नत प्रजाति आईपीए 203 की औसत उपज 18–19 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। इस प्रजाति पर आधारित प्रथम पंक्ति प्रदर्शनों को उत्तर प्रदेश के हमीरपुर जनपद में प्रदर्शित किया गया जिनमें श्री. सुशील राजपूत सम्मिलित थे। श्री. सुशील राजपूत 24 वर्षीय युवा प्रगतिशील किसान हैं जो उत्तर प्रदेश राज्य के हमीरपुर जिले के कुसमरा ब्लॉक के अंतर्गत खादी लोधाम गांव के निवासी हैं जो 19 हेक्टेयर भूमि पर खेती करते हैं। वह रबी में गेहूं, चना, मटर, मसूर, सरसों और खरीफ में उड़द, मूंग और अरहर आदि फसलों की खेती करते हैं। वर्ष 2020–21 में संस्थान भ्रमण के दौरान उन्होंने अरहर की उन्नत प्रजाति आईपीए 203 की खेती में अपनी रुचि दिखाई। इसके पश्चात श्री. राजपूत ने अरहर की खेती के लिए संस्थान के वैज्ञानिकों द्वारा बताए गए अनुशंसित तकनिकियों के साथ अपने खेतों में लंबी अवधि के अरहर की प्रजाति आईपीए 203 के प्रदर्शन की भागीदारी में हिस्सा लिया।उन्होंने अपने प्रदर्शन क्षेत्रों से देशी प्रजाति (19.25 क्विंटल/हेक्टेयर) की तुलना में 25 क्विंटल/हेक्टेयर की उपज अर्जित की। श्री सुशील राजपूत को देशी प्रजाति (1,05,875 रुपये प्रति हेक्टेयर) की तुलना में प्रदर्शन क्षेत्रों से 1,37,500 रुपये प्रति हेक्टेयर का लाभ भी अर्जित हुआ। श्री सुशील राजपूत इस प्रजाति के प्रदर्शन से संतुष्ट हैं और आने वाले वर्षों में अरहर की उन्नत प्रजाति आईपीए 203 की खेती बड़े पैमाने पर करने

की योजना बना रहे हैं।

चना की खेती द्वारा उत्पादन में व्रद्धि तथा टिकाऊ कृषि परिस्थितिकी तंत्र

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर द्वारा वर्ष 2021–22 में उत्तर प्रदेश के फ़तेहपुर जनपद के खजुहा प्रखण्ड के अंतर्गत कूकेड़ी ग्राम में भागीदार किसानों के प्रक्षेत्रों पर चने की उन्नत प्रजाति 'जी. एन. जी. 2207' के प्रदर्शन लगवाए गए । श्री ज्ञानेन्द्र कुमार (42 वर्षीय) भी भागीदार किसानों में से एक है जो खजुहा प्रखण्ड के कूकेड़ी ग्राम निवासी हैं। श्री ज्ञानेन्द्र कुमार अपनी कुल प्रक्षेत्र (10 हे.) पर ज्वार, तिल, चना/गेहूं, मूंग आदि फसलों की खेती करते हैं । प्रथम पंक्ति प्रदर्शन 2021–22 के अंतर्गत श्री ज्ञानेन्द्र कुमार को संस्थान द्वारा 0.68 हे. क्षेत्रफल के लिए चने की उन्नत प्रजाति 'जी. एन. जी. 2207' का 45 किग्रा बीज प्रदान किया गया। श्री ज्ञानेन्द्र कुमार ने वैज्ञानिकों के देख–रेख में अनुशंसित तकनिकियों का पालन कर फसल की खेती की। फसल की कटाई के बाद अन्य प्रजातियों (7.50 कु./हे.) की तुलना में, 'जी.एन.जी. 2207' के उत्पादन (9.25 कु./हे.) द्वारा 1.75 कु./हे. अधिक उपज अर्जित की। भागीदार किसानों द्वारा प्रदर्शित प्रजाति को चमकीले एवं स्वस्थ्य बीज, रोग प्रतिरोधी, जड़ सड़न रोग प्रतिरोधी तथा अधिक उपज के लिए सराहना की गयी।

उपरोक्त विशेषताओं को देखते हुए, कूकेड़ी ग्राम के लगभग 35 किसानों एवं अन्य ग्राम के लगभग 40–50 किसानों ने उपरोक्त प्रजाति के 2000 कु. बीज की मांग की है। किसानों द्वारा यह भी बताया गया कि अलगे वर्ष वे लगभग 25–30 हे. क्षेत्र पर प्रदर्शित प्रजाति को ही लगाएंगे।

प्रथम पंक्ति प्रदर्शन उन्नत दलहन उत्पादन तकनीकों के प्रचार प्रसार में एक मत्वपूर्ण घटक हैं। उपरोक्त वर्णित उन्नत दलहन उत्पादन तकनीकों पर आधारित प्रथम पंक्ति प्रदर्शनों के सफल अनुभव इस दिशा में एक सार्थक प्रयास है। यह सफल अनुभव समान उत्पादन स्थितियों में कार्यरत अन्य किसानों को प्रदर्शित उन्नत दलहन उत्पादन प्रौद्योगिकियों को अपनाने के लिए प्रेरित करने की दिशा में योगदान दे सकते हैं।

ऊसर भूमि में गेहूँ बीज उत्पादन तकनीकी

अशोक जायसवाल, चन्दू सिंह, संजीव शर्मा, विपिन कुमार, सुभाष बाबू,
गणपति मुक्रि, सुनील कन्नोजिया, ज्ञानेन्द्र सिंह एवं रणबीर सिंह
बीज उत्पादन इकाई एवं सस्यविज्ञान संभाग,
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली 110 012

विश्व में लगभग 1000 मिलियन हेक्टेयर भूमि लवण प्रभावित है। भारत में लवण प्रभावित मृदाओं का क्षेत्रफल 6.727 मिलियन हेक्टेयर है जिसमें लवणीय एवं क्षारीय मृदाओं का क्षेत्रफल क्रमशः 2.956 व 3.771 मिलियन हेक्टेयर है। देश के 15 राज्यों (पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, मध्य प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, गोवा, कर्नाटक, तेलंगाना, आंध्र प्रदेश, पश्चिम बंगाल, ओडिशा, तमिलनाडु, केरल एवं अण्डमान व निकोबार) में एक गंभीर समस्या है। गुजरात में लवणीय मृदाओं का सर्वाधिक क्षेत्रफल 16.8 लाख हेक्टेयर है जो राष्ट्रीय क्षेत्रफल का 56.84 प्रतिशत है। इसके पश्चात् पश्चिम बंगाल (14.92 प्रतिशत), राजस्थान (6.61 प्रतिशत) एवं महाराष्ट्र (6.23 प्रतिशत) का स्थान है। गेहूँ की ये प्रजातियां में नमक सहनशीलता में सुधार के लिए अच्छी उपयोगी सिद्ध हुई हैं और सी एस एस आर आई, करनाल में हमारे गेहूँ प्रजनन प्रयासों में एक प्रमुख भूमिका निभाई है। दो नमक सहिष्णु गेहूँ किस्मों, केआरएल 1–4 और केआरएल 19 को चयन की वंशावली विधि द्वारा विकसित किया गया है और क्रमशः 1990 और 2000 में सीवीआरसी के माध्यम से जारी किया गया है। इसके अलावा, दो और किस्मों केआरएल 210 और केआरएल 213 को हाल ही में पहचाना गया है जिसे संस्तुत के लिए अनुमोदित किया गया है। गेहूँ के उत्पादन में वृद्वि के साथ–साथ गेहूँ के बीज उत्पादन में भी विस्तार हुआ हैं लेकिन अभी भी इस क्षेत्र में बहुत कुछ करने की आवश्यकता हैं। गेहूँ की फसल का उत्पादन उच्चतम स्तर तक तब तक नहीं पहुँच सकता जब तक कि किसान उच्च गुणवत्ता वाला बीज स्वयं पैदा न करें।

भूमि एवं उसकी तैयारीः ऊसर भूमि में भूमि की तैयारी के लिए एक बार मिट्टी पलट हल या हैरो से जुताई करने के बाद 2–3 जुताई कल्टीवेटर से करनी चाहिए। प्रत्येक जुताई के बाद पाटा अवश्य लगाना चाहिए ताकि मिट्टी भुरभुरी हो जाये। खेत की तैयारी पलेवा करने के बाद उचित ओट आने पर करनी चाहिए। भूमि शोधन के लिये मिट्टी परीक्षण कराने के पश्चात आवश्यक तत्वों का प्रयोग करें। संस्तुति के आधार पर ऊसर भूमि में जिप्सम का प्रयोग 200 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से करना चाहिए।

प्रमुख प्रजातियाँः अच्छी पैदावार लेने के लिए निम्न प्रजातियों का चयन करना चाहिएः

क्र. सं.	प्रजाति का नाम	उपयुक्त क्षेत्र	परिपक्वता दिन	लवणीय मृदा	क्षारीय मृदा	औसत पैदावार कुं/हेक्टर	गुणवत्ता लक्षण
1.	के.आर.एल. 1.4	उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र	145	up to ECe 7.0 dSm-1	pH up to 9.3	30.0	बौनी किस्म
2	के.आर.एल. 19	उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र	134.140	ECe 5-7 dSm-1	pH 9.3 to 9.4	30.0	मध्यम देर से परिपक्व बुवाई के लिए उपयुक्त, मध्यम बौनी, पीले और भूरे रस्ट के साथ–साथ करनाल बंट प्रतिरोधी किस्म, यह प्रजाति वहा अच्छा प्रदर्षन करती जहा भूजल खारा है (ECiw 15. 20 dSm-1 , RSC 12.14 meq l-1)

3	के.आर.एल. 210	उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र और उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्र	143	ECe 6.0 dSm-1	pH up to 9.3	35.0	मध्यम देर से परिपक्व बुवाई के लिए उपयुक्त, मध्यम बौनी, यह प्रजाति पीले और भूरे रस्ट, लूस स्मट, करनाल बंट और फ्लैग स्मट रोग से प्रति प्रतिरोध ी किस्म।
4	के.आर.एल. 213	उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र और उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्र	145	ECe 6.0-6.4 dSm-1	up to pH 9.2-9.3	33.0	मध्यम देर से परिपक्व बुवाई के लिए उपयुक्त, मध्यम बौनी, पीले और भूरे रस्ट के साथ–साथ करनाल बंट और हिल बंट प्रतिरोधी किस्म, यह प्रजाति वहा अच्छा प्रदर्षन करती जहा भूजल खारा है (ECiw 15 dSm-1; RSC 12-14 meq l-1).
5	के.आर.एल. 283	उत्तर प्रदेश	134.144	ECe 6.0-6.5 dSm-1	pH 9.0-9.3	45-48	मल्टीपल स्ट्रेस प्रतिरोधी (अजैविक स्ट्रेस सॉडिसिटी / क्षारीयता / वाटर लॉगिंग / लॉजिंग / जेविक स्ट्रेस स्ट्रा. इप रस्ट / ब्राउन रस्ट / स्टेम रस्ट / करनाल बंट / एफिड / शूट फ्लाई

बुआई का समयः बीज उत्पादन के लिए बोई जाने वाली सभी प्रजातियों को 15–30 नवम्बर तक बोना चाहिए।

बीज दरः ऊसर भूमि में बीज का जमाव कम होता है इसलिये ऊसर भूमि में संस्तुत मात्रा से सवा गुना अर्थात 125 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से बीज अवष्य डालना चाहियें। बीज बोने से पूर्व थायरम 2.5 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करना चाहिए

बुआई की विधिः ऊसर भूमि में बीजोत्पादन के लिए बुवाई हमेशा पंक्तियों में सीड्ड्रिल अथवा हल के द्वारा 20–22.5 सें.मी. की दूरी पर तथा बीज को 7–8 सें.मी. की गहराई पर बुवाई करनी चाहिए। बुवाई के बाद पाटे का प्रयोग अवश्य करना चाहिए।

उर्वरकों का प्रयोगः बीज फसल की अच्छी बढ़वार तथा उपज के लिए उर्वरकों के रूप में प्रति हेक्टेयर 120 कि.ग्रा. नत्रजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस तथा 50 कि.ग्रा. पोटाश तथा 20–25 किग्रा. जिंक सल्फेट प्रयोग करना चाहिए। जिसके लिए 210 कि.ग्रा. यूरिया, 130 किग्रा. डी.ए.पी. तथा 80 कि. ग्रा. म्यूरेट आफ पोटाश तथा 20–25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट पर्याप्त रहता है। अच्छी उपज के लिये 60 कुन्तल प्रति हेक्टेयर गोबर की खाद का प्रयोग करना चाहिये क्योंकि गोबर खाद ऊसर भूमि की उपजाऊ शक्ति को बढाने में मदद करती है। ढैंचा को हरी खाद के रूप में प्रयोग करना अत्यन्त लाभकारी रहा है।

सिंचाईः ऊसर भूमि में प्रथम सिंचाई बुवाई के 20–25 दिन बाद, दूसरी फुटाव अवस्था पर बुवाई के 40–50 दिन बाद तीसरी बुवाई के 60–65 दिन बाद बढ़वार अवस्था पर, चौथी 80–85 दिन बाद गोभ अवस्था पर, पॉचवी 100–105 दिन बाद दूधिया दाने की अवस्था पर तथा अन्तिम सिंचाई 115–120 दिन बाद दाना बनने की अवस्था पर करनी चाहिए। सिचाई की प्रथम ताज जड़ अवस्था (बुवाई के 20–25 दिन बाद) तथा दूधिया अवस्था (बुवाई के 100–105 दिन बाद) पर सिंचाई करना अत्यंत आवश्यक हैं। इन अवस्थाओं पर सिचाई न करना अथवा देर से करने से बीज की पैदावार तथा गुणवत्ता में भारी कमी हो जाती हैं।

प्रमुख खरपतवारः गेहूँ की फसल में मुख्यत गुल्ली डंडा या गेहूँ का मामा (*फैलेरिस माइनर*) जंगली जई, बथुवा, जंगली पालक, कृष्णनील तथा हिरनखुरी खरपतवारों का प्रकोप अधिक रहता है। रासायनिक खरपतवार नियंत्रण के लिए बुवाई के तुरन्त बाद पैन्ड़ीमैथीलीन (स्टाम्प) 35 ई.सी. 2.5–3 लीटर 500–600 लीटर पानी में मिलाकर

प्रति हैक्टेयर क्षेत्रफल में छिड़काव करना चाहिए अर्थात पेन्डीमेथेलिन का प्रयोग फसल बोने के 72 घंटे के अंदर अर्थात बीजों के अंकुरण से पूर्व करना चाहिए। खड़ी फसल में खरपतवारों को रसायनो द्वारा बुवाई के 30–35 दिन बाद क्लोडीनाफोप प्रोपागिल+मेटसल्फयूरान मिथाइल (वेस्टा) का मिश्रण अथवा सल्फोसल्फयूरान +मेटसल्फयूरान मिथाइल (टोटल) के एक पैकिट जो की एक एकड़ के लिए पर्याप्त है 200–250 ली. पानी मे घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए। मंडुसी एवं जंगली जई से बचाव के लिए आइसोप्रोटयूरोन प्रयोग कर सकते हैं। चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों को नियंत्रित करने के लिए 2,4–डी या मेटसल्फ्युरोन प्रयोग में ला सकते हैं। इन खरपतवारनाशी दवाईयों का छिड़काव फसल बोने के 30–35 दिन बाद प्रथम सिंचाई के बाद करना चाहिए।

बीमारी एवं नियंत्रण

कंडुवा रोग (लूज स्मट): यह फफूंदी वाली बीमारी हैं इसके नियंत्रण के लिए उपचार के लिए बीटावेक्स या वेनलेट 2–2.5 ग्रा. प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करके बुवाई करनी चाहिए।

रतुआः इसके नियंत्रण के लिए समय पर बुवाई करें तथा 2 ग्रा. डाइथेन एम.45 प्रति ली. पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

करनाल बंटः इसके नियंत्रण के लिए बाविस्टिन दो ग्राम दवा प्रति लीटर पानी के हिसाब से घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

झुलसा रोग : इस रोग में प्रायः पत्तियों पर पीले भूरे और काले रंग के चकत्ते पैदा हो जाते हैं इसका नियंत्रण भी डाइथेन एम–45 के छिड़काव से किया जा सकता हैं।

कीट एवं नियंत्रण :–

चेपा या माहू (एफिड): यह हल्के हरें रंग का मुलायम कीट हैं जो पौधों के विभिन्न भागों का रस चूस कर हानि पहुँचाता है। इसके नियंत्रण के लिए कोनफीडोर 125 मि. ली. 500–600 ली. पानी प्रति हैक्टेयर में घोलकर छिड़काव करना चाहिए अथवा इसके लिए रोगोंर 2 मि.ली./लीटर अथवा इमिडाक्लोप्रिड 200 की 20 ग्राम सक्रिय तत्व/है. की दर से 1000 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। यदि कीट का संक्रमण बहुत अधिक हो तो 15 दिन बाद दोबारा छिड़काव करें।

दीमकः खड़ी फसल में दीमक के नियंत्रण के लिए क्लोरोपाइरोफास (20 ई.सी.) 2.5–3 ली. प्रति हेक्टेयर सिंचाई के साथ फसल में देने से नियंत्रण हो जाता है। दीमक प्रभावित क्षेत्रों में मेड़ पर गेहूँ की फसल पर विशेष ध्यान देना चाहिए। खड़ी फसल वाले खेतों में दीमक के उपचार हेतु क्लोरपाईरिफॉस की 3 लीटर/है. की दर से 20 कि.ग्रा. बालू या बारीक मिट्टी एवं 2–3 लीटर जल मिलाकर प्रभावित खेत में बुवाई के 15 दिन बाद बिखेर दें।

मोल्या या सूत्रकृमि नियंत्रणः इसके नियंत्रण हेतू रोगरोधी प्रजातियों का प्रयोग करें।

अंवाछनीय पौधे निकालना (रोगिंग)

अवांछनीय पौधों को निम्न प्रकार पहचान सकते हैं

1. फसल में लम्बे या बौनें पौधे निकाल देने चाहिए ।
2. पत्तियों के रंग, आकार के आधार पर भिन्न दिखाई देने वालें पौधों को निकाल देना चाहिए।
3. बालियों की बनावट, रंग, आकार, लम्बाई आदि के आधार पर भिन्न प्रजाति के पौधों को निकाल देना चाहिए।
4. बालियॉ सूखने पर बालियों के रंग तथा उनकी पकने की भिन्नता के आधार पर अवांछनीय पौधों को निकाल देना चाहिए ।
5. तूड़ की लम्बाई रंग के आधार पर भी भिन्न प्रकार के पौधों को निकाल देना चाहिए।
6. कंडुवा रोग से ग्रसित पौधें दिखाई देने पर ऐसे पौधों को कागज के लिफाफे में कालें पाउडर वाले भाग को ढककर निकालें तथा जमीन में दबा दें।

बीज फसल निरीक्षणः गेहूँ की बीज फसल में कम से कम दो निरीक्षणों की आवश्यकता होती हैं प्रथम निरीक्षण

बीज फसल में 5 प्रतिशत से अधिक फूल आ जाते है तब किया जाता है द्वितीय निरीक्षण फसल की कटाई से पहले किया जाता हैं।

कटाई एवं थ्रेसिंग: गेहूँ की फसल विभिन्न क्षेत्रों में कटाई के लिए मध्य अप्रैल तक तैयार हो जाती है क्योंकि गेहूँ की बालियों के अधिक सूखने पर दाने छिटकने लगते हैं या बालियां ही टूटने लगती हैं। इससे फसल की उपज को काफी हानि होती है। इसलिए फसल के अधिक पकने के पहले ही हाथ से कटाई कर लेनी चाहिए। गेहूँ के दाने आसपास के वातावरण से बहुत जल्दी नमी सोख लेते हैं, इसलिए इसे सूखे स्थान पर रखना चाहिए ताकि भण्डारण कीटों का नुकसान व दाने की गुणवत्ता के दुष्प्रभाव से बचा जा सके। फसल की कटाई जब दानों में 16 प्रतिशत से कम नमी हो तब करनी चाहिए। बीज को थ्रेसिंग के बाद घूप में सुखाकर नई बोरियों में रखना चाहिए।

ग्रेड़िग, पैकिंग एवं भण्डारण: भण्डार में रखने से पूर्व मई–जून में ग्रेडिंग करके भण्डार ग्रह में बीज को रखना चाहिए। ग्रेडिंग करते समय उपर की जाली का आकार 6 मि.मी. तथा नीचे की जाली का आकार दानों के आधार पर 1.8–2.30 मि.मी. रखना चाहिए। बीज को 40 कि.ग्रा. तथा 10 कि.ग्रा. के थेलों में पैक करना चाहिए। भण्डार ग्रह में 15 दिन के अन्तर पर डेल्टामेथ्रिन या न्यूवान 5 मि.ली. प्रति लीटर पानी का घोल बनाकर दिवारों, छतों तथा फर्श पर छिड़काव करना चाहिए। भण्डार ग्रह में बीज को दीवारों से 1 फीट की दूरी पर लकड़ी या प्लास्टिक के पैलेट पर रखना चाहिए। बीज को भण्डार ग्रह में रखने के बाद पोलीथीन से ढ़ककर सेल्फास की 3 ग्रा. की 2–3 गोलियां प्रति टन बीज के हिसाब से रखकर घुम्रण करना चाहिए।

बीज मानक

गुणवत्ता युक्त बीज में मानक निम्नलिखित होने चाहिए।

कारक	आधार बीज	प्रमाणित बीज
शुद्ध बीज (न्यूनतम)	98 प्रतिशत	98 प्रतिशत
अन्य तत्व (अधिकतम)	2 प्रतिशत	2 प्रतिशत
अन्य फसलों के बीज (अधिकतम)	10 प्रति कि.ग्रा.	20 प्रति कि.ग्रा.
खरपतवारों के कुल बीज (अधिकतम)	10 प्रति कि.ग्रा.	20 प्रति कि.ग्रा.
आपतिजनक खरपतवारों के बीज (अधिकतम)	2 प्रति किग्रा.	5 प्रति किग्रा.
अंकुरण क्षमता (न्यूनतम)	85 प्रतिशत	85 प्रतिशत
नमी (अधिकतम)	12 प्रतिशत	12 प्रतिशत
पोलीथीन में पैक करते समय नमी (अधिकतम)	8 प्रतिशत	8 प्रतिशत
करनाल बंट (अधिकतम)	0.05 प्रतिशत दानों की संख्या	0.25 प्रतिशत दानों की संख्या
निमेटोड से ग्रस्त	एक बीज भी नहीं	एक बीज भी नहीं

भण्डार ग्रह में बीज की बैग को प्लास्टिक के पैलेट पर रखते हुए

डेल्टामेथिन या न्यूवान का छिड़काव फर्श, दीवारों तथा बैग पर

कृषि– बागवानी के क्षेत्र में कंप्यूटर अनुप्रयोग

प्रीति डागर[1], लोकेन्द्र सिंह[2], अंकित[3], अलका अरोड़ा[4]
[1]शोध छात्रा, पी.एच.डी., कंप्यूटर अनुप्रयोग संभाग, भा.कृ.सं.अ.सं
[2]शोध छात्र, पी.एच.डी., पुष्प विज्ञान एव भूदृश्य निर्माण संभाग, भा.कृ.अनु.सं.
[3]शोध छात्र, पी.एच.डी., सस्यविज्ञान संभाग, भा.कृ.अनु.सं.
[4]प्रधान वैज्ञानिक एव प्राध्यापक, कंप्यूटर अनुप्रयोग संभाग, भा.कृ.सं.अ.सं

21वीं सदी की सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक टिकाऊ कृषि उत्पादन करना है। जो पर्यावरण को नुकसान पहुंचाए बिना भोजन, चारा और फाइबर की मांगों को पूरा कर सके।इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कृषि बागवानी क्षेत्र को आवश्यक नई प्रौद्योगिकियों को अपनाने की आवश्यकता है। कृषि तथा बागवानी ने मशीनीकरण के क्षेत्र में तो प्रगति प्राप्त कर ली है। कृषि के क्षेत्र में कंप्यूटर का प्रयोग करने की बहुत संभावना है। यदि हम हाइटेक कृषि की बात करे, कंप्यूटर की उपयोगिता बहुत ही बढ़ जाती है। आजकल हाइड्रपानिक्स, एक्वापोनिक्स, वर्टिकल फ़ार्मिंग का बढ़ता क्षेत्र कंप्यूटर के अनुप्रयोगों के बिना अधूरा है।

बागवानी के क्षेत्र में हरित गृह (ग्रीनहाउस) को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए कंप्यूटर अनुप्रयोगों का महत्वपूर्ण योगदान है इसके लिए हरित गृह के अंदर वातावरण को फसल के अनुरूप बनाने के लिए इंटरनेट ऑफ थिंग्स का उपयोग किया जाता है। ग्रीनहाउस के अंदर वातानुकूलित वातावरण के लिए उपयुक्त तापमान, प्रकाश, आर्द्रता और कार्बन डाई आक्साइड का होना बहुत ही आवश्यक है जिसके लिए विभिन्न प्रकार के सेन्सर का प्रयोग किया जाता है और उन्हे कंप्यूटर सॉफ्टवेयर के मध्यम से संचालित किया जाता है जिसके द्वारा विभिन्न कारकों का प्रतिदिन का डाटा भी संग्रह किया जा सकता है। इसमें सर्वर (मुख्य कंप्यूटर) को सेंसर के साथ जोड़ के कंप्यूटर में सभी कारकों को रखा जाता है। इन्हें शोधकर्ताओं के फोन या लैपटॉप पर भी भेजा जा सकता है।

इस डाटा का प्रयोग भविष्य में हरित गृह को सुचारु रूप से चलाने के लिए किया जाता है। इसी प्रकार हरित गृह के अंदर पौधों की पोषक तत्वों की आवश्यकता की आपूर्ति करने के लिए कंप्यूटर के मध्यम से खाद की निश्चित मात्रा तथा अंतराल को सॉफ्टवेयर में भेजा जाता है। इसके लिए सेंसर और कनेक्टिंग डिवाइस जैसे विभिन्न घटकों का उपयोग किया जाता है। इस प्रकार कंप्यूटर के अनुप्रयोग से पौधों में जल तथा उर्वरक की आपूर्ति की जाती है ।

कंप्यूटर अनुप्रयोग से सम्बन्धित विभिन्न तकनीकियाँ

- लेसर लेवलर द्वारा भूमि को समतल करने के लिए
- खेत की बीजाई में कंप्यूटर आधारित सॉफ्टवेयर का प्रयोग
- कीटनाशी छिड़काव में ड्रोन तकनीक में प्रयोग
- लेसर तकनीक से खरपतवारों को निकालना
- ड्रिप सिंचाई में प्रयोग

मोबाईलएप अनुप्रयोग

तकनीकी के समय में मोबाईल का प्रयोग दिनोंदिन बढ़ता ही जा रहा है। आज विभिन्न प्रकार की समस्त जानकारियाँ मोबाईल एप के मध्यम से प्राप्त की जा सकती है। जिसमें मौसम से सम्बन्धित, गुणवत्ता युक्त बीज तथा पौध सामग्री, कीटों तथा बीमारियों के आगमन तथा बचाव, मिट्टी की जांच और पोषक तत्वों के कमी के लक्षण इत्यादि जानकारियाँ मोबाईल एप के माध्यम से प्राप्त की जा सकती है। इन मोबाइल ऐपलिकेशन्स को किसी भी मोबाइल फ़ोन पर प्ले स्टोर से डाउनलोड जा सकता है।

आज बहुत से कृषि से जुड़े गैर सरकारी संगठन भी कृषि तकनीकी से संबंधित जानकारियों को मोबाईल के मध्यम से किसानों तक पहुँचा रहे हैं। किसान कृषि से संबंधित मोबाईल एप को अपने मोबाईल में डाउनलोड तथा पंजीकरण करके कृषि से संबंधित जानकारियाँ प्राप्त

कर सकता है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, भारत सरकार द्वारा भी इस प्रकार की कृषि से संबंधित मोबाइल ऐपलिकेशन्स विकसित की गई है। जो कृषि विषयों जैसे बागवानी, खाद्य फसलें, पशुधन, मत्स्य, इत्यादि से संबंधित है।

डीसीजन सपोर्ट सिस्टम (निर्णय आधारित प्रणाली)

डीसीजन सपोर्ट सिस्टम का प्रयोग कृषि के आकड़ों को विभिन्न प्रकार के स्त्रोतों से एकत्रित करके और उनका आँकलन करने के लिए किया जाता है। इसका उद्देश्य अंतिम उपयोगकर्ता तक समस्त आकड़ों को पहुँचाना है, ताकि निर्णय लेने की प्रक्रिया में यह सहायक सिद्ध हो सके।

अनुसंधान के परिणामों तथा अन्य महत्वपूर्ण जानकारियाँ का प्रयोग कंप्यूटर में संग्रहित किया जाता है। जो बाद में अनुसंधानकर्ताओं को कृषि से संबंधित महत्वपूर्ण निर्णय लेने में सहायक होता है।

भौगोलिक सूचना प्रणाली (जीआईएस)

भौगोलिक सूचना प्रणाली का उपयोग कृषि से संबंधित विभिन्न प्रकार की जानकारियाँ प्रदान करने के लिए किया जाता है। इन प्रणालियों के उपयोग से पहले, किसानों को मिट्टी की दशा, फसल उत्पादन की जानकारी बारे में तथा अप्रत्याशित मौसम की स्थिति की बारे में पर्याप्त जानकारी नहीं होती थी।

कृषि में भोगोलिक सूचनाओं को प्राप्त करने के लिए उपग्रहों, विमानों, ड्रोन और सेंसर इत्यादि का प्रयोग किया जा रहा है।इन उपकरणों का उपयोग छायाचित्रों को बनाने तथा उन्हें मानचित्रों और अदृश्य डेटा से जोड़ने के लिए किया जाता है।

जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न प्रकार के कारकों जैसे फसल की खेत में स्थिति, मिट्टी की दशा, जलनिकासी और ढलान की स्थिति, मिट्टी पीएच और पोषक तत्वों की स्थिति आदि की जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

ग्लोबल पोजिशनिंग सिस्टम (जीपीएस)

यह एक रेडियो नेविगैशन सिस्टम है जिसका उपयोग मौसम से जुड़ी सटीक जानकारियाँ जैसे वर्षा की तीव्रता, समय और वेग, समुद्र में तूफान आने के संभावना, भूमि में जलभराव की स्थिति, बाढ़ इत्यादि की जानकारियाँ समय पर देने में सहायक है।

कृषि में ग्लोबल पोजिशनिंग सिस्टम पर आधारित प्रौद्योगिकियां जैसे सिंचाई, फील्ड मैपिंग, मिट्टी के नमूने, ट्रैक्टर मार्ग दर्शन और फसल स्काउटिंग की निगरानी करने में भी मदद करती हैं। इस प्रकार की तकनीक फसल उपज को बढ़ाने के ऐसे पर्याप्त तरीकों की जानकारी प्रदान करती है जो स्थायी कृषि के लिए सर्वोत्तम पर्यावरणीय प्रथाओं के अनुरूप हैं।

डाटा माइनिंग

डाटा माइनिंग बहुत बड़े डेटा के समूह में से महत्वपूर्ण सूचनायें और संक्षिप्त डाटा को खोजने की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में परम्परागत सांख्यिकी, कृत्रिम बौद्धिकता तथा कंप्यूटर ग्राफिक्स का प्रयोग किया जाता है।

डाटा माइनिंग का प्रयोग करके छुपे हुए पैटर्न और उपयोगी डाटा को खोजा जाता है और इन पैटर्न और उपयोगी डाटा के आधार पर उचित निर्णय लिए जाते हैं।

डाटा माइनिंग की प्रक्रिया का प्रयोग करके कृषि में आने वाली समस्याओं का समाधान करने और भविष्य में होने वाली मौसम, कृषि उत्पादन और बाजार से संबंधित जानकारियों को बताने में किया जाता है।

कंप्यूटर विज़न

इस तकनीक में कंप्यूटर कृषि से संबंधित जानकारियों को छायाचित्रों एव वीडियो के मध्यम से ग्रहण करता है और उनको समझता है। इसका प्रयोग विस्तृत रूप से बागवानी के विभिन्न विषयों को आसान बनाने के लिए किया जाता है जिसमें हार्वेस्टिंग रोबोट, उपज निर्धारण, कीटों और बीमारियों की पहचान प्रमुख हैं। कंप्यूटर विज़न के प्रयोग से ड्रोन फसलों की निगरानी और कीटनाशी का छिड़काव के समय और संसाधनों को अधिक उपयोगी बनाया जा सकता है।

वेब आधारित अनुप्रयोग

कंप्यूटर के मध्यम से इंटरनेट के द्वारा कृषि से जुड़ी समस्त जानकारियाँ प्राप्त करने के लिए सरकार ने कृषि

विषयों से संबंधित वेबसाईट बनायी है जिनके द्वारा किसान घर बैठे अपने प्रश्नों के जवाब तथा महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकता है।

https://www.iari.res.in : अनाज फसलें, सब्जियों, फल और फूलों की विभिन्न प्रजातियों तथा उनकी उत्पादन तकनीक की समस्त जानकारी पूसा संस्थान की वेबसाईट से प्राप्त की जा सकती है।

http://ndri.res.in/about-ndri/ : पशुधन तथा दुग्ध विज्ञान से संबंधित समस्त जानकारी प्राप्त की जा सकती है ।

https://mausam.imd.gov.in/ : मौसम से संबंधित समस्त जानकारियाँ प्राप्त की जा सकती है ।

https://agricoop.nic.in/ : कृषि एव सहकारिता विभाग की आधिकारिक वेबसाइट है। यहाँ पर परिवहन और कर से संबंधित जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

https://www.enam.gov.in/web/ : राष्टीय कृषि बाजार अथवा ई–नाम एक आनलाइन कृषि उत्पादों को खरीदने और बेचने का प्लेटफार्म है। इस वेबसाईट पर देश भर के किसान अपने कृषि उत्पाद को उचित समय पर उचित मूल्य पर कही भी बेच सकते है।

https://www.india.gov.in/topics/agriculture: यह वेबसाईट कृषि उत्पाद, फार्म मशीनरी, सरकारी योजनाएं एव नीतियों, कृषि ऋण, बाजार मूल्य, पशुधन, मत्स्य, मधुमक्खी पालन, बागवानी, रेशमपालन इत्यादि कृषि से जुड़े विषयों की जानकारी प्रदान करती है।

https://krishi.icar.gov.in : कृषि से संबंधित विभिन्न विषयों के साहित्य यहाँ प्राप्त किए जा सकते है ।

https://www.plantauthority.gov.in/ : कृषकों द्वारा विकसित की गई प्रजातियों का ब्यौरा, अपनी विकसित की गई प्रजाति को कैसे पंजीकृत कराएं तथा कृषक अधिकार से संबंधित जानकारी इस वेबसाईट के माध्यम से प्राप्त की जा सकती है।

https://nhb.gov.in/ : हाई–टेक बागवानी करने के लिए भारत सरकार द्वारा चलाई जा रही योजनाओ पर सब्सिडी प्राप्त करने के लिए किसान इस वेबसाईट का प्रयोग कर सकते है।

कृषि मोबाईल एप

Groundnut&IPMGroundnut&IFCSaur Shakti ICAR

mKRISHI® FisheriesFertilizer Calculator – Goa

लेखकों से...

1. अपने तकनीकी एवं लोकप्रिय लेख हिन्दी में टाइप करवाकर भेजें।
2. रचना पृष्ठ के एक ओर उचित हाशिया और पंक्तियों के बीच स्थान छोड़कर सम्पादक, प्रसार दूत के पास यथा समय भेजें।
3. वर्ष 2015 से प्रसार दूत का अंक त्रैमासिक किया गया है। लेखकों से अनुरोध है कि प्रथम अंक के लिए प्रकाशनार्थ सामग्री 30 जनवरी, द्वितीय अंक 30 अप्रैल, तृतीय अंक 31 जुलाई तथा चतुर्थ अंक 31 अक्तूबर तक अवश्य भेज दें।
4. तकनीकी पर दी गई जानकारी की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होगी। रचना को प्रकाशित करने या न करने का पूरा अधिकार सम्पादक मंडल को होगा।

प्रसार दूत का प्रकाशन समय

प्रथम अंक मार्च, द्वितीय अंक जून, तृतीय अंक सितम्बर और चतुर्थ अंक दिसम्बर में प्रकाशित होगा।

वार्षिक शुल्क ₹150/- मनीऑर्डर द्वारा भेजें।

शुल्क और सामग्री भेजने एवं पत्रिका मंगवाने का पता

प्रभारी अधिकारी

कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)

भा.कृ.अ.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012

फोन: 011-25841670, 25846233, 25841039, 25803600

पूसा एग्रीकॉम: 1800 11 8989 (नि:शुल्क)

ई-मेंल: incharge_atic@iari.res.in

पाठकों से...

प्रसार दूत में प्रकाशित किसी भी तकनीकी के विषय में अंश और समाधान हेतु आपके पत्रों का स्वागत है। विषयों पर अधिक जानकारी के लिए लेखक से सीधे भी सम्पर्क कर सकते हैं।

किसानों से...

यदि आपकी खेती व पशु-पालन संबंधी कोई विशेष समस्या है, तो लिखकर भेजें। हम प्रसार दूत के माध्यम से उसका समाधान आप तक पहुंचाएंगे।

अन्त में ...

आपकी खुशहाली ही हमारी सफलता है।

निदेशक, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली 110012 द्वारा प्रकाशित तथा

मैसर्स एम एस प्रिंटर्स, सी-108/1 बैक साइड नारायणा इंडस्ट्रीयल एरिया, फेस-1, नई दिल्ली-110028, द्वारा मुद्रित

फोन: 7838075335, 9899355565, 9899355405,